मनाली

ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक अध्ययन

हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी

मनाली

ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक अध्ययन

हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी

क्लिफ़-एण्ड एस्टेट, शिमला–171001

मनु महाराज
माता हिडिम्बा
ठारा करडू देवताओं
व
कुल्लू जनपद के अधिष्ठाता
श्री रघुनाथ जी को
सादर समर्पित

मनाली

ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक अध्ययन

संपादक

डॉ. देवेन्द्र गुप्ता

सह संपादक

डॉ. श्यामा वर्मा

सूनृता गौतम

सामग्री संकलन

डॉ. सूरत ठाकुर

हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी

कुल्लू देवपरम्परा परियोजना के लिए पर्यटन विकास परिषद् मनाली, ज़िला कुल्लू से प्राप्त वित्तीय अनुदान के अंतर्गत प्रकाशित

परियोजना प्रभारी
रमेश जसरोटिया
अनुसंधान अधिकारी

ISBN : 978-81-86755-81-5

प्रकाशक : सचिव, हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी,
क्लिफ़ एण्ड एस्टेट, शिमला, 171001, हि.प्र.

प्रथम संस्करण : 2013
मूल्य : सजिल्द ₹ 150.00
पेपरबैक ₹ 125.00
मुद्रक : एस.एन. प्रिंटर्स, जी–28,
सैक्टर 2, बवाना, दिल्ली–110039

Manali : Aitihasik Samskritik aivam Samajik Adhyayan : A Monograph
Published by : Secretary, Himachal Academy of Arts, Culture and Languages, Cliff-end Estate, Shimla-171001, H.P. India
Edition : 2013
Price : Hard Bound : ₹ 150.00 Paperback : ₹ 125.00
Edited by : **Dr. Devender Gupta**

आमुख

वीरभद्र सिंह

मुख्यमंत्री, हिमाचल प्रदेश एवं अध्यक्ष, हिमाचल अकादमी

आधुनिक वैज्ञानिकों के अनुमान के अनुसार लाखों वर्ष पूर्व जब हिमालयी भू-भाग से दक्षिणी पठार का जुड़ाव हुआ होगा तो वहां से दक्षिण-पश्चिम क्षेत्र के अगले भू-भाग का भारत से सम्बंध टूट गया और एक नया भूखण्ड बना। यह अलग हुआ भूखण्ड आज का अफ्रीका महाद्वीप है। समुद्र का जल स्तर बढ़ने के कारण तत्कालीन भारत वर्ष के दक्षिण में समुद्र के किनारे बसी मानवजाति ने उत्तर अर्थात् हिमालय की ओर पलायन किया। प्राकृतिक कारणों से हुए जल-प्लावन से, इस भारतीय उपमहाद्वीप के बहुताधिक प्राणी काल का ग्रास बने। इस जल-प्लावन के शांत होने पर कुछ लोग अपने पूर्व आवास-क्षेत्रों को छोड़कर राजस्थान आदि स्थानों में बस गए और भारतीय पौराणिक विचारधारा के अनुसार मानवजाति का आदि पुरुष माने जाने वाले मनु धुर उत्तर में आकर रहने लगे। यही स्थान वर्तमान मनाली माना जाता है। भागवत पुराण के आठवें स्कन्ध के 24 वें अध्याय का मनन करने से ज्ञात होता है कि मनु का मूल स्थान दक्षिण प्रदेश था क्योंकि इसी अध्याय में सत्यव्रत राजा को द्रविड़ेश्वर कहा गया है, जिसके लिए मत्स्यावतार हुआ था। यह भावना तो भारतीय जन-मानस के हृदय में पारम्परिक रूप से चली आ रही है कि मत्स्य ने मनु की नौका को हिमालय तक सुरक्षित पहुंचाया था। मनु ने ही मानव धर्म-शास्त्र की रचना की थी जिसे 'मनुस्मृति' के रूप में जाना जाता है। मनुस्मृति मानव जीवन-पद्धति

और सामाजिक कर्तव्यों का बोध करवाने वाली संसार की सर्वप्रथम दिशानिर्देशिका है। मनु का प्रभाव इतना व्यापक था कि आने वाली पीढ़ियों को मनु द्वारा निर्धारित नियमों का आचरण करने पर मनुष्य कहा जाने लगा। मनुष्य शब्द की व्युत्पत्ति मनुः जातः यानी मनु से उत्पन्न अर्थात् मनु की संतान से हुई है। हिमाचल प्रदेश में अभी तक आदमी या मनुष्य के लिए माह्णू-मह्णु शब्द सामान्य प्रचलन में है जो मूल रूप में मनु का ही पर्यायवाची है।

मनु के वैदिक और पौराणिक आख्यानों का विस्तार न करते हुए सीधे इस बात पर आते हैं कि जहां मनु का घर (मन्वालय) था वह स्थान आज मनाली नाम से विख्यात है। मनाली मात्र मनु का आवास स्थल, प्राकृतिक सौन्दर्य से अचम्भित करने वाला अथवा ख्याति प्राप्त पर्यटन स्थल ही नहीं है, अपितु इतिहास व सांस्कृतिक विरासत का एक विस्मृत पक्ष भी है। 19 वीं शताब्दी के मध्य तक चीन से आने वाली रेशम निर्मित वस्तुओं तथा तिब्बत से आयातित उत्कृष्ट ऊन के व्यापार का पड़ाव मनाली ही था। प्राचीन भारतीय ग्रेट सिल्क ट्रेड रूट (Great Silk Trade Route) यहीं से गुज़रता हुआ कराकोरम दर्रे को पार कर मध्य एशिया तक जाता था। बुखारा, समरकंद, अक्सू, कशगार, यारकंद, खोतान आदि प्रमुख व्यापारिक केन्द्रों के व्यापारी भारत आगमन के दौरान अकसर मनाली में विश्राम करते थे। कुल्लू के तत्कालीन सहायक आयुक्त ए.एफ.पी. हारकोर्ट ने अपनी एक रिपोर्ट में लिखा है कि मध्य एशियाई व्यापार में हुई वृद्धि का परिणाम यह हुआ कि 1862 ई. में जो व्यापार तेईस हज़ार पाउंड का था, वह वर्ष 1871 तक अप्रत्याशित रूप में बढ़कर एक लाख पचास हज़ार पाउंड पहुंच गया। इस बात से सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि आर्थिक आदान-प्रदान और विभिन्न संस्कृतियों के आपसी मेल मिलाप से कुल्लू-मनाली का क्षेत्र कितना समृद्ध रहा होगा।

एक अथवा एकाधिक विषयों की साहित्यिक संरचना का विवरणात्मक आलेखन ही समुचित विनिबन्ध अथवा मोनोग्राफ माना जाता है। इस दृष्टि से हिमाचल अकादमी की ओर से मनाली की ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और सामाजिक पृष्ठभूमि पर प्रकाशित यह पुस्तक मोनोग्राफ होते हुए भी मनाली के बारे में जानकारी हासिल करने वाले सामान्यजनों, विशेषकर जिज्ञासुओं और शोधकार्य पर गहन अध्ययन करने वालों के लिए आधार ही नहीं अपितु संदर्भ सामग्री भी साबित होगी, इसका मुझे पूर्ण विश्वास है। मोनोग्राफ के लेखक और कार्य से जुड़े अकादमी के सभी अधिकारी और सहायक इस महत्त्वपूर्ण प्रकाशन के लिए साधुवाद के पात्र हैं।

प्राक्कथन

उपमा चौधरी

प्रधान सचिव (भाषा–संस्कृति), हिमाचल प्रदेश सरकार

विश्व के मानचित्र पर मनाली एक जाना-पहचाना नाम है। देश-प्रदेश से लाखों पर्यटक इसके प्राकृतिक सौंदर्य से खिंचे चले आते हैं। मनाली मूलतः एक गाँव है, जो धीरे–धीरे नगर के रूप में विकसित हुआ। यहाँ से लगभग पचीस किलोमीटर की दूरी पर स्थित व्यास कुंड से निकली प्रसिद्ध व्यास नदी इस नगर को दो भागों में विभाजित करती है। दोनों ओर कई गाँव अवस्थित हैं।

मनाली वर्तमान में हिमाचल प्रदेश के ज़िला कुल्लू का एक उपमंडल है। यह वही कुल्लू है, जिसका महाभारत, राजतरंगिणी तथा अन्य पौराणिक ग्रंथों में कुलूत या उलूक देश के नाम से वर्णन है। कुल्लू का संपूर्ण क्षेत्र विभिन्न घाटियों में विभक्त है, जिसमें से एक मनाली है, जो रायसन तक फैली हुई है। मनाली से कुल्लू की ओर चार किलोमीटर की दूरी पर क्लाथ में गर्म जल के कुंड हैं और मनाली से लाहुल की ओर अठारह किलोमीटर की दूरी पर अद्भुत प्राकृतिक छटा से भरपूर सोलंग नाला स्कीइंग के लिए विश्व प्रसिद्ध स्थान है। मनाली-लाहुल मार्ग पर लगभग चालीस किलोमीटर की दूरी पर स्थित विश्व प्रसिद्ध रोहतांग दर्रे में पहुंचने से पूर्व, रास्ते में कोठी, मढ़ी, गुलाबा मोड़ व राहला के खूबसूरत जलप्रपात देखने को मिलते हैं। यह दर्रा अथवा जोत लाहुल घाटी का प्रवेशद्वार है। यहाँ दोपहर के समय तेज़ हवाएं चलती हैं, अतः इस समय यात्रियों के लिए यहाँ आना खतरनाक हो सकता है। इस जोत में अत्यधिक बर्फ़ पड़ने के कारण जून से अक्तूबर तक ही आवाजाही संभव

है। लाहुल जाने के लिए वर्ष 2002 में आरम्भ की गई रोहतांग सुरंग निर्माणाधीन है।

मात्र पर्यटन की दृष्टि से ही नहीं, अपितु ऐतिहासिक और पौराणिक दृष्टि से भी मनाली का विशेष महत्त्व है। यहाँ मनु का प्राचीन मंदिर, वशिष्ठ कुंड एवं वशिष्ठ मंदिर तथा हिडिंबा मंदिर प्रमुख धार्मिक स्थल हैं। लोकमान्यता के अनुसार भीम ने हिडिंबा से इसी स्थान पर विवाह किया था। ऐसा भी माना जाता है कि अर्जुन ने यहाँ से छह किलोमीटर की दूरी पर अर्जुन गुफ़ा में तपस्या की थी। मनाली के ठीक सामने ऊंचाई पर इंद्रकील पर्वत है।

कहते हैं कि मनाली नाम 'मनु के आलय' से पड़ा। मनु को सृष्टि का प्रथम पुरुष कहा जाता है और वैदिक संहिताओं में इसे एक ऐतिहासिक व्यक्ति माना गया है। यह प्रथम मानव था, जो मानवजाति के पिता के रूप में स्वीकार्य है। वैदिककालीन जल-प्लावन की कथा के नायक मनु ही हैं। इस नाम के अनेक उल्लेखों से प्रतीत होता है कि यह नाम न होकर एक उपाधि है।

आदि स्वायंभुव मनु ब्रह्मा के मानस पुत्र हैं, परंतु बाद के सभी मनु सृष्टि के मानव या सृष्टि की किसी शक्ति से उत्पन्न हुए हैं। वर्तमान में सातवें मनु वैवस्वत का मनाली से सीधा संबंध स्थापित होता है। मनाली के पास अलेऊ गाँव का नाम मनु की पुत्री 'इला' से उद्भूत हुआ माना जाता है।

अतः हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी द्वारा ऐतिहासिक गांव मनाली, जहाँ से मानव संस्कृति और सृष्टि का विस्तार हुआ माना जाता है, के भूगोल, इतिहास, संस्कृति एवं अन्य पहलुओं पर मोनोग्राफ़ प्रकाशित करने का प्रयास प्रशंसनीय है। आशा करती हूं कि इस मोनोग्राफ़ में शामिल सामग्री पर्यटकों, पाठकों एवं शोधकर्ताओं के लिए महत्त्वपूर्ण सिद्ध होगी।

पुरोवाक्

डॉ. देवेन्द्र गुप्ता

निदेशक, भाषा-संस्कृति विभाग एवं सचिव, हिमाचल अकादमी

हिमालयो नाम नगाधिराजः अर्थात् हिमालय उत्तर दिशा में समस्त पर्वतों का राजा है— यह कहकर महाकवि कालिदास ने हिमालय पर्वत की ऊंचाई का उल्लेख करते हुए स्वरचित साहित्य में हिमालय-क्षेत्र की संस्कृति का भी वर्णन किया है। संस्कृत साहित्य के प्रख्यात किरातार्जुन संवाद एवं युद्ध का वर्णन हिमालयी सांस्कृतिक विरासत का एक उदाहरण है। वैज्ञानिक शोध एवं वैदिक तथा पौराणिक साहित्य के मंथन से भी यही स्थापित होता है कि जल-प्लावन के पश्चात् आदि सृष्टि का आरम्भ हिमालय क्षेत्र में हुआ। यहीं से कालांतर में वैदिक संस्कृति विश्व के अनेक भूखण्डों में प्रसारित हुई। इसी क्षेत्र में आर्य संस्कृति के पश्चात् यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, किरात, कोल, खश आदि पौराणिक जातियों का वर्चस्व रहा। कालांतर में राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक धरातल में समय-समय पर अनेकों परिवर्तन होते रहे।

रामायण तथा महाभारत कालीन कई प्रसंगों के अवशेष आज भी यहां के जनमानस में रचे-बसे हैं। हिन्दू तथा बौद्ध धर्म एवं संस्कृति के अनेक पुरातात्त्विक चिह्न भी इसकी प्राचीनता के साक्ष्य हैं। संसार के प्रामाणिक प्राचीनतम ग्रन्थ वेद तथा पुराणों की रचना भी हिमालय क्षेत्र की इन्हीं पर्वत श्रृंखलाओं, यहां बहने वाली नदियों के संगम पर हुई। अनेकों वैदिक एवं पौराणिक ऋषियों की तपस्स्थली एवं कर्मस्थली यह हिमभूमि सांस्कृतिक विरासत की साक्षी है। हिमाचल प्रदेश के कुल्लू-मनाली क्षेत्र में ऋषियों के मंदिर स्थापित हैं जहां पर आज भी देवताओं के रूप में उनकी पूजा होती है।

ब्रह्माण्ड पुराण में वर्णित कुलान्त पीठ महात्म्य के अनुसार विपाशा नदी कुलांत पीठ के पश्चिम में तथा उसके पूर्व की ओर पशुपति शिव विद्यमान हैं। पार्वती शबरी इस क्षेत्र की अधिष्ठात्री देवी हैं। यहीं इन्द्रकील पर्वत है जहां भगवान शिव ने शबर का वेश धारण करके अर्जुन को दिव्य अस्त्र-शस्त्रों का ज्ञान दिया था। यहां बहने वाली विपाशा में ऋषि वसिष्ठ ने नागपाश से मुक्त होकर विश्व को वेद, शास्त्रों तथा पुराणों का अपूर्व ज्ञान दिया। अपने सौ पुत्रों की मृत्यु के शोक से मुक्त होकर कठोर तपस्या करके वह ब्रह्मज्ञानी कहलाए जिन्होंने कालजयी साहित्य की रचना की। आज भी महर्षि वसिष्ठ की तपस्थली 'वशिष्ठ' गांव में उनका प्राचीन मंदिर तथा पवित्र कुण्ड विद्यमान है। इसी तरह ऋषि गौतम, शांडिल्य, पराशर तथा सृष्टि के आदि मानव मनु के भी यहां पर मंदिर हैं, जहां उनकी पूजा होती है।

कुल्लू जनपद के मनाली क्षेत्र के वशिष्ठ गांव में गर्म जल का कुण्ड भी है। इस क्षेत्र में वैष्णव, शैव तथा शाक्त परम्परा के अनेक प्राचीन मंदिर हैं। मनाली गांव में मनु का ऐतिहासिक मंदिर विद्यमान है। ढूंगरी में देवी हिडिम्बा का प्राचीन मंदिर स्थित है। कुल्लू के पारंपरिक दशहरे में देवी हिडिम्बा का विशेष स्थान है। दशहरे का सबसे पहला निमंत्रण देवी हिडिम्बा को ही भेजा जाता है। कुल्लू का राज परिवार आज भी देवी हिडिम्बा को 'दादी' मानकर सम्मान देता है।

देवभूमि तथा तीर्थस्थल होने के कारण ही इस क्षेत्र को मोक्षदायक कहा गया है। देव परंपरा में आज भी यह स्थान 'जगती पूछ' के लिए विख्यात एवं सर्वमान्य है। रोहतांग पर्वत की तलहटी में बसा मनाली जहां विभिन्न देवी-देवताओं के मंदिरों की विद्यमानता तथा प्राचीन ऋषि-मुनियों की तपस्या से अति पावन क्षेत्र है वहीं वर्तमान में अनेकों कलाकारों तथा साधकों की कर्मस्थली भी है। यहां की प्राकृतिक छटा का ही यह अद्‌भुत करिश्मा है कि सोवियत रूस का चित्रकार रोरिख़ आकर यहीं बस गया और नग्गर में विश्व विख्यात आर्ट गैलरी की स्थापना की। इस क्षेत्र की सामाजिक संरचना, रीति रिवाज, लोक आस्थाएं, पर्व, त्योहार, मेले, जातरों आदि को इस पुस्तक में अपेक्षित स्थान दिया गया है जिससे पाठकों को समस्त विषयों की प्रामाणिक जानकारी मिल सकेगी।

कुल्लू देवपरंपरा-प्रलेखन तथा प्रकाशन योजना के अंतर्गत कुल्लू-मनाली, बंजार-सैंज तथा आनी-निरमण्ड ये तीन पुस्तकें पर्यटन विकास परिषद मनाली द्वारा प्रदत्त वित्तीयानुदान के अंतर्गत प्रकाशित की जा चुकी हैं। क्षेत्रफल तथा जनसंख्या की दृष्टि से मनाली यद्यपि एक छोटा सा कस्बा है परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि कुल्लू जनपद का मनाली क्षेत्र अपनी सांस्कृतिक, सामाजिक तथा धार्मिक पृष्ठभूमि एवं विरासत के आधार पर महत्त्वपूर्ण है। यहां की देव संस्कृति, रीति रिवाज, परंपराएं,

पर्व, त्योहार, ऐतिहासिक स्थल तथा प्राकृतिक सौन्दर्य सभी के लिए आकर्षण का केन्द्र हैं।

अकादमी ने प्रदेश की सांस्कृतिक धरोहर वाले गांवों पर मोनोग्राफ प्रकाशित करने का निर्णय लिया है। इस कड़ी में मनाली पर पुस्तक प्रकाशन का यह पहला प्रयास है। विद्वान् लेखक डॉ. सूरत ठाकुर ने बहुत कम समय में अकादमी के आग्रह पर इस मोनोग्राफ के लिए सामग्री उपलब्ध करवाने का सराहनीय कार्य किया।

हिमाचल प्रदेश के लोकप्रिय मुख्यमंत्री श्री वीरभद्र सिंह जी का अकादमी अध्यक्ष के नाते सदैव आशीर्वाद रहा है। उनके कुशल मार्गदर्शन में अकादमी ने अनेक महत्त्वपूर्ण उपलब्धियां अर्जित की हैं। प्रदेश में कला संस्कृति भाषा एवं साहित्य की उन्नति तथा लेखकों और कलाकारों के प्रोत्साहन के लिए अकादमी के माध्यम से महत्त्वपूर्ण योजनाएं संचालित की जा रही हैं। मनाली के मोनोग्राफ के लिए माननीय मुख्यमंत्री महोदय ने 'आमुख' लिखकर हमें अनुगृहीत किया है, इसके लिए हम उनके हार्दिक धन्यवादी हैं।

श्रीमती उपमा चौधरी, प्रधान सचिव भाषा-संस्कृति एवं उपसभापति, हिमाचल अकादमी का अकादमी के संचालन में हमें सदैव प्रोत्साहन मिलता रहा है। मनाली पर इस मोनोग्राफ के प्रकाशन हेतु उनकी विशेष प्रेरणा तथा मार्गदर्शन का ही फल है कि बहुत ही कम समय में यह पुस्तक प्रकाशित हो सकी है। इसके लिए हम उनके भी आभारी हैं।

इस योजना के प्रभारी व अकादमी के अनुसंधान अधिकारी श्री रमेश जसरोटिया ने पूर्ण मनोयोग एवं परिश्रम से इस पुस्तक के संपादन तथा प्रकाशन के दायित्व का निर्वाह किया, जिसमें डॉ. करम सिंह का भी सहयोग रहा। अकादमी की अनुसंधान अधिकारी डॉ. श्यामा वर्मा तथा श्रीमती सूनृता गौतम ने उपलब्ध सामग्री के सम्पादन तथा शोधन में विशेष योगदान दिया। सामग्री को परिष्कृत एवं संशोधित करके पाठकों तक पहुंचाने में इन द्वारा किया गया कार्य प्रशंसनीय है।

यद्यपि इस पुस्तक के प्रकाशन में आधार सामग्री तथा उपलब्ध सूचनाओं के संपादन में प्रचलित मान्यताओं तथा परंपराओं का विशेष ध्यान रखा गया है परन्तु इसके बावजूद भी यदि कोई जानकारी छूट गई हो तो सुधी पाठकों तथा विद्वानों से यह आग्रह रहेगा कि संबंधित तथ्य अकादमी तक पहुंचाएं ताकि आगामी संस्करण में सुधार किया जा सके।

लेखकीय

विष्णु पुराण के अनुसार सृष्टि के विकास क्रम को गति देने के लिए ब्रह्मा ने अपने दक्षिण भाग से मनु तथा वाम भाग से शतरूपा को उत्पन्न किया था। इसलिए मनु को सृष्टि का प्रथम पुरुष कहा जाता है। मात्स्यकल्प में भगवान विष्णु ने मत्स्य रूप धारण करके जिन राजर्षि श्राद्ध देव की रक्षा की, वह विवस्वान सूर्य के पुत्र वैवस्वत इस मन्वन्तर के मनु हैं। समाज शास्त्र के प्राचीनतम आधार ग्रंथ मनुस्मृति के रचयिता वैवस्वत मनु ही हुए हैं। शतपथ ब्राह्मण में वर्णन आता है कि एक दिन जब मनु को हाथ धोने के लिए पानी दिया गया तो उनके हाथों में एक छोटी सी मछली आ गई। मछली ने मनु से उसे बचाने का अनुरोध करते हुए कहा, "मुझे समुद्र में मत फेंको, वहां मुझे बड़ी मछलियां खा जायेंगी। यदि तुम मुझे बचाओगे तो एक दिन मैं भी तुम्हारे काम आऊंगी।" मनु ने मछली के आग्रह पर उसे एक पात्र में रखकर पालना शुरू किया। कुछ बड़ी होने पर उसे तालाब में डाल दिया। जब वह पूर्ण रूप से विकसित होकर बड़ी हो गई तो मनु ने उसे समुद्र में डाल दिया। समुद्र में डालने से पूर्व मछली ने मनु से कहा, "शीघ्र ही इस पृथ्वी पर प्रलय आने वाली है। पूरी पृथ्वी जल से भर जाएगी। अतः तुम एक बड़ी सी नाव बनवा लेना। जब जलप्रलय होगा तो तुम उस नाव में सवार हो जाना। सप्त ऋषियों को भी उसमें अपने साथ रखना तथा जीवन की हर वस्तु को बीज रूप में रखवा लेना। नाव को मेरे सींग के साथ रस्से से बांध लेना। तब मैं आप की रक्षा करूंगी।" जब जलप्लावन हुआ तो मनु ने मछली के कथनानुसार सब सामान नाव में रख लिया और सप्त ऋषियों सहित स्वयं भी उसमें सवार हो गया। मछली उस नाव को खींचती हुई हिमालय के उच्च शिखर हेमकूट पर्वत के पास रुक गई। उसके बाद पानी का स्तर घटना आरम्भ हुआ। सप्त ऋषि यहां के पहाड़ों में तपस्या करने चले गए और मनु ने मनाली से सृष्टि का विकास-क्रम आरम्भ किया।

मनाली अर्थात् मनु का घर जिसे प्रकृति ने वह सब कुछ दिया है, जो अधिकांश प्राणियों के लिए आवश्यक होता है। ऊंचे-ऊंचे बर्फीले पर्वत शिखर, हरे-भरे वन, जड़ी-बूटियों से परिपूर्ण ढलानें व चरागाहें, सेब आदि फलदार वृक्षों के लिए उपयुक्त वातावरण, व्यास और नदी नालों द्वारा लाई गई धान की उत्तम खेती

के लिए उर्वरा मिट्टी ने मनाली को सम्पूर्णता प्रदान की है।

विश्व-मानचित्र पर मनाली जाना पहचाना नाम है। यहां के प्राकृतिक सौंदर्य से आकर्षित होकर देश-विदेश से लाखों पर्यटक इस सुरम्य एवं पवित्र भूमि पर घूमने के लिए आते हैं और अपने साथ यहां की मधुर स्मृतियां संजोकर ले जाते हैं। मनाली केवल मनु का ही घर नहीं है, यह ऋषि-मुनियों, नाग, यक्ष, दानवों सहित कोल, किरात, गन्धर्वों का भी पसंदीदा स्थान रहा है। यहां की संस्कृति तो देवी-देवताओं के इर्दगिर्द ही घूमती है। लोगों के जीवन की हर छोटी-बड़ी गतिविधि में देवी-देवताओं की भूमिका अनिवार्य रहती है।

मनाली की महत्ता को समझते हुए हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी का यहां के भूगोल, इतिहास, धार्मिक, आर्थिक तथा सामाजिक जीवन पर मोनोग्राफ प्रकाशित करने का प्रयास सर्वथा प्रशंसनीय है। इससे प्रदेश के पर्यटन व्यवसाय में अवश्य वृद्धि होगी। हिमाचल प्रदेश के माननीय मुख्यमंत्री श्री वीरभद्र सिंह जी का लोक-संस्कृति के प्रति विशेष लगाव सर्वविदित है। इसी कारण ऐसी कृतियां प्रकाश में आती हैं। अकादमी के सचिव डॉ. देवेन्द्र गुप्ता की सार्थक पहल से मुझे इस मोनोग्राफ को तैयार करने का अवसर प्राप्त हुआ, इसके लिए मैं इनका दिल से आभारी हूं। इस परियोजना के प्रभारी और अकादमी के अनुसंधान अधिकारी श्री रमेश जसरोटिया द्वारा समय-समय पर दिए गए मार्गदर्शन के लिए इनका भी धन्यवादी हूं।

किसी गांव विशेष पर मोनोग्राफ तैयार करने का काम आसान नहीं है, विशेषकर ऐसे स्थान का जिसके बारे में लोग बहुत कुछ जानते हों। फिर भी यह कोशिश की गई है कि इसमें उन जानकारियों को अवश्य सम्मिलित किया जाए जो अब तक प्रकाश में नहीं आ पाई हैं। इस कार्य को पूर्ण करने में मुझे विभिन्न पुस्तकों की मदद तो मिली ही, इसके अतिरिक्त उपमण्डल अधिकारी मनाली, अध्यक्ष नगर पंचायत मनाली, वन मण्डल अधिकारी कुल्लू के अलावा प्रो. एन. सी. शर्मा, डॉ. परमेश्वरी प्रसाद कायस्था, कैप्टन रनधीर सलहुरिया, मास्टर सतीश सूद द्वारा सहयोग प्राप्त हुआ है जिस के लिए उनका आभार व्यक्त करना अपना दायित्व मानता हूं। मुझे आशा है कि यह मोनोग्राफ जहां स्थानीय लोगों के साथ-साथ यायावरों, पर्यटकों एवं पाठकों को मनाली के बारे में आवश्यक जानकारी उपलब्ध करवायेगा, वहीं यह शोधार्थियों को नये अनुसंधान करने के लिए प्रेरित भी करेगा।

डॉ. सूरत ठाकुर

विषय अनुक्रमणिका

प्रथम अध्याय

भौगोलिक स्थिति

पश्चिम-उत्तर हिमालय में स्थित हिमाचल प्रदेश में ऐसी अनेक उपत्यकाएं हैं, जिन्हें यहां बहने वाली नदियों ने उर्वर तो बनाया ही है, साथ ही यहां के प्राकृतिक सौंदर्य को विभिन्न रंगों की तूलिकाओं से कुछ इस प्रकार रंगा है, जिसे देखने के लिए लोग स्वतः ही खिंचे चले आते हैं। कुल्लू की व्यास घाटी भी इसका अपवाद नहीं है। देशी-विदेशी लाखों पर्यटक हर वर्ष इस घाटी में प्रकृति के साथ सामंजस्य बिठाने आते हैं। यहां उन्हें वह सुकून मिलता है, जो बड़े शहरों व मैदानों में उपलब्ध नहीं होता।

कुल्लू जनपद के ज़िला मुख्यालय से उत्तर की ओर 40 किलोमीटर की दूरी पर स्थित मनाली उपमण्डल मुख्यालय है। यहां पर तहसील के अलावा उपमण्डल मुख्यालय के अन्तर्गत पड़ने वाले सभी सरकारी कार्यालय विद्यमान हैं। मनाली उपमण्डल के अन्तर्गत नग्गर विकास खण्ड 96.8 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैला है। इसमें 40 पंचायतें हैं। कुल्लू की व्यास घाटी में कुल्लू से फोजल नाले तक के लोगों को सरयाल और बायीं तरफ फोजल नाले से और दायीं तरफ राऊगी नाले से ऊपर के लोगों को झेचे कहा जाता है। इस घाटी को उझी कहते हैं अर्थात् जो क्षेत्र ऊपर का हो, उसे उझी के नाम से पुकारा जाता है। इस तरह यह उझी घाटी का मुख्य केन्द्र है।

पुराने ज़माने में राजस्व उगाही के लिए कुल्लू में विभिन्न वज़ीरियां बनाई गई थीं। इन वज़ीरियों के अन्तर्गत कोठियां और प्रत्येक कोठी का एक नेगी होता था। वह टैक्स उगाही करके वज़ीर के पास जमा करवाता था और वजीर राजकोष में। उस समय प्रशासन को सुचारू ढंग से चलाने के लिए कुल्लू रियासत को छः वज़ारतों—पैरोल, लग-सारी, लग-महाराजा, रूपी, इन्नर-सिराज तथा आउटर सिराज में बांटा हुआ था। लग-सारी वज़ीरी में सरवरी खड्ड के दायीं तरफ तथा सुलतानपुर से ऊपर फोज़ल नाले तक का क्षेत्र शामिल था जो 94 वर्ग मील में फैला हुआ था। बजौरा से ऊपर सरवरी व्यास के बायीं

तरफ लग महाराजा 84 वर्गमील तक था। रूपी बज़ीरी में व्यास के बायीं तरफ भून्तर से लारजी तक पार्वती और सैंज खड्ड के मध्य का क्षेत्र शामिल था। यह 677 वर्गमील में फैला हुआ था। सैंज खड्ड से तीर्थन खड्ड और जलोड़ी तक बंजार का क्षेत्र इन्नर सिराज कहलाता था जिसका क्षेत्रफल 208 वर्ग मील था। जलोड़ी से पार और सतलुज से इस ओर का क्षेत्र आऊटर सिराज कहलाता था। यह 275 वर्गमील में फैला हुआ था।

वज़ीरी पैरोल में रोहतांग से लेकर फोज़ल नाले तक व्यास के दायें-बायें वाला तथा व्यास के बायीं और पार्वती के दायीं तरफ पार्वती-व्यास के संगम जिया तक का क्षेत्र एवं मलाणा घाटी शामिल थी। यह 496 वर्ग मील में फैला हुआ था। इस वज़ीरी में बड़ागढ़, मनाली, जगतसुख, बरशाई, नग्गर तथा काईस कोठियां शामिल थीं। ये कोठियां आज भी हैं। इनमें से मनाली कोठी तथा जगतसुख कोठी आमने-सामने हैं। जगतसुख में वशिष्ठ, प्रीणी, जगतसुख तथा गोजरा फाटियां शामिल हैं। बड़ागढ़ में मेहा, दुआड़ा, कटराईं, बारी, हलाण, शेगली, बड़ाग्रां, पनगां, रियाड़ा तथा ब्राण फाटी, बरशाई में सजला, करजां, सोयल फाटी, नग्गर कोठी में हलाण, नग्गर, मलाणा, नथान व जाणा तथा खराल में काईस, खराल, कशावरी और पीणी फाटी शामिल हैं।

मनाली कोठी एक विस्तृत भूभाग में अवस्थित है। यह क्लाथ बिन्दु ढौग से लेकर सोलंग तक व्यास के दायीं ओर की लगभग 18 किलोमीटर की पट्टी तथा दूसरी तरफ सोलंग से बाहंग तक व्यास नदी के वाम तट के लगभग 5 किलोमीटर के विस्तार में फैली है। मनाली से लाहुल की ओर यह घाटी की अंतिम कोठी है। इसके अन्तर्गत चार फाटियां-शलीण, नसोगी, मनाली और बुरूआ तथा छः पंचायतें-शलीण, नसोगी, मनाली, बुरूआ, शणाग और पलचान हैं। इनमें शलीण फाटी के अन्तर्गत क्लाथ, सवाई, छियाल, शलीण, पारशा, चौरीबिहाल, बरौड़, गधेरनी और मढ़ी नामक छोटे-बड़े नौ गांव आते हैं। शांडिल्य ऋषि की राजधानी होने से शलीण इसका प्रमुख गांव है। सरौढ़ नाला फाटी नसोगी और शलीण को अलग करता है। नसोगी फाटी के अन्तर्गत सिहुंसा, कन्याल, छियाल, रांगड़ी, बलसारी, सियाल, नसोगी, बनौण और बसेही गांव आते हैं। बुरूआ फाटी में गोशाल, शणाग, बुरूआ, मझाच, सोलंग, पलचान, रुआड़, कोठी और कुलंग गांव आते हैं। मनाली फाटी में ढुंगरी, मनाली गांव तथा मनाली बाज़ार आता है। मनाली पंचायत में छः वार्ड ढुंगरी, बदौती बौती, टोटल-टपाणी, सराजी, धोणी-चाणी तथा खारका हैं। यह उझी घाटी का

सबसे बड़ा गांव माना जाता है।

वर्तमान मनाली शहर को पहले *दाणा आगै* के नाम से भी जाना जाता था। पंजाब के व्यापारी तिब्बत के लिए इस मार्ग से होकर घोड़े-खच्चरों पर सामान ले जाने के दौरान रात यहीं गुज़ारते थे और घोड़े-खच्चरों को दाना खिला कर व्यास के किनारे चरने के लिए छोड़ दिया जाता था। इसी आधार पर यहां का नाम दाणा आगै पड़ा। वर्तमान शहर सन् 1875 ई. में बसा, जब कैप्टन बैनन ने यहां आकर रहना शुरू किया।

मनाली पहुंचने के लिए दिल्ली, चंडीगढ़, पठानकोट, शिमला और चम्बा आदि प्रसिद्ध शहरों से सीधी बस सेवायें उपलब्ध हैं। दिल्ली और शिमला से भून्तर विमानपत्तन के लिए हवाई सेवायें भी उपलब्ध हैं। भून्तर में पहली बार सन् 1959 में एक छोटा विमान उतरा था। दिल्ली से मनाली 570 किलोमीटर, चंडीगढ़ से 322, पठानकोट से 325, शिमला से 274 और भून्तर से 50 तथा कुल्लू से 40 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है।

वर्तमान में मनाली बाज़ार नगर परिषद है। घटोत्कच के स्थान से नीचे की ओर बाज़ार का सारा क्षेत्र इसमें शामिल है। नवीनतम जनगणना के अनुसार इसकी जनसंख्या लगभग 8600 है। 1961 में मनाली तथा आसपास के गांवों को मिलाकर पंजाब स्टेट सरकार की अधिसूचना सं. 1987–CI(3CI)-61/28318, Dated 11 july, 1961 को यह नोटिफाईड एरिया कमेटी बनाई गई, जिसमें वशिष्ठ, चजोगा, अलेऊ, मनाली, दाना बाज़ार, ढुंगरी, सियाल, नसोगी, बलसारी, छियाल और भोलू कोट गांव शामिल किए गए। तब कुल क्षेत्र लगभग छः वर्ग किलोमीटर था। सन् 1969 में हिमाचल सरकार ने ढुंगरी क्षेत्र को इससे बाहर कर दिया तब इसका क्षेत्रफल तीन वर्ग किलोमीटर का रह गया। आरम्भ में इस कमेटी में 8 नामित सदस्य थे जिसमें चार सरकारी और चार गैर सरकारी हुआ करते थे। उपायुक्त कुल्लू, अधिशासी अभियन्ता लोकनिर्माण विभाग, वन मण्डल अधिकारी तथा निदेशक पर्वतारोहण एवं सम्बद्ध खेल संस्थान मनाली इसके सरकारी सदस्य थे। गैर सरकारी सदस्यों में से दो सामान्य श्रेणी तथा एक-एक अनुसूचित जाति और स्थानीय महिलाओं में से थे। इनका कार्यकाल तीन साल का रखा गया था। इस कमेटी की प्रमुख आय सरकारी अनुदान और वार्षिक किराये की औसत कीमत का दस प्रतिशत गृहकर तथा गाड़ियों से लिए गये प्रवेश टैक्स से थी।

1994 के नये पंचायती राज एक्ट के अन्तर्गत नोटिफाईड एरिया कमेटी

के स्थान पर इसे नगर पंचायत बनाया गया। 1991 की जनगणना के अनुसार इसकी जनसंख्या 2433 थी, जो वर्तमान में 8600 तक पहुंच गई है। नगर पंचायत में 7 चुने हुए सदस्यों का प्रावधान रखा गया। इनमें से ही बहुमत के आधार पर अध्यक्ष और उपाध्यक्ष बनते रहे हैं। हिमाचल प्रदेश टाऊन एण्ड कन्ट्री प्लानिंग एक्ट 1977 के अन्तर्गत यह नगर पंचायत भी आ गई। 27 नवम्बर 2009 को नगर पंचायत को नगर परिषद का दर्ज़ा दिया गया, जो अब लगभग 4 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैली है। इसमें भी 7 वार्ड हैं, जिसमें ढुंगरी, भजोगी, स्कूल क्षेत्र, मॉडल टाऊन, मनु मार्किट, गोंपा क्षेत्र तथा पुलिस स्टेशन क्षेत्र शामिल हैं। इसकी आय गृह-कर, टोल-टैक्स, तह-बाज़ारी फीस, बूथ और दुकानों के किराये तथा सरकारी अनुदान से होती है।

मनाली के आसपास सफाई व्यवस्था, सौंदर्यकरण तथा आधारभूत ढांचा विकसित करने के लिए सरकार ने प्रदेश के बाहर से आने वाली गाड़ियों से ग्रीन टैक्स लेना आरम्भ किया है, जिससे एकत्रित धन को मनाली टूरिज़्म डवेल्पमेन्ट काऊंसिल के परामर्श से खर्च किया जाता है।

नदी-नाले

रोहतांग के व्यास कुंड से व्यास नदी, जिसका वैदिक नाम अर्जीकिया था, निकल कर मनाली से होकर बहती है। ग्रीक इतिहासकार व्यास को Hyphasis कहते हैं। गंगा, यमुना, सरस्वती, शुतुद्रि (सतलुज), परुष्णी (रावी), असिक्नी, वितस्ता (झेलम), चन्द्रभागा के साथ अर्जीकी का नाम भी आया है। जिस भू-खण्ड से अर्जीकी नदी बहती रही है उसे आर्जीकिया कहा गया है। इसी व्यास नदी के ऊपरी भाग को ऊझी और यहां के रहने वालों को झेचा कहते हैं। हेमंत ऋतु में यहां के लोग अपनी भेड़-बकरियों को मण्डी, सुन्दरनगर, बिलासपुर और सोलन ज़िलों तक ले जाते हैं और गर्मियों में इनकी भेड़-बकरियां लाहुल-स्पिति के विभिन्न क्षेत्रों में जाती हैं। इन सारे ज़िलों में इनकी चरांद (चरागाह) के अधिकार हैं।

दुशौहर सरोवर से आता हुआ राहणी नाला व्यास नदी का पहला सहायक नाला है। इन दोनों के संगम के साथ ही पूर्व दिशा से एक और नाला आबशार बनाता हुआ व्यास के पानी से मिलता है। रोहतांग शिखर पर व्यास-रिखी से दक्षिण पूर्व की ओर गुज़रता वन विभाग का पैदल रास्ता है और आगे निकल कर इसी के किनारे एक और प्रसिद्ध सरोवर *भृगुसर* स्थित है। यह मार्ग बड़ा दुर्गम, लम्बा और जोखिम भरा है। यात्री प्रायः इससे अपेक्षाकृत

निकट, आसान परन्तु चढ़ाई वाले दो मार्गों को अधिक पसंद करते हैं, एक वशिष्ठ गांव से और दूसरा कोठी गांव से। दिखाई तो नहीं देता किन्तु स्थानीय लोगों का निश्चित विश्वास है कि इस व्यास-रिखी, दुशौहर-सरोवर और भृगु हिम खण्ड का पानी मार्ग में अनेक छोटे जल-प्रपातों के पानी को साथ लेकर पहाड़ों से टकराता और शोर मचाता तेज़ गति से नीचे गिरता हुआ गांव पलचान के निकट किंचित् समतल क्षेत्र में पहुंचता है। यहां इसके साथ इसी तरह पहाड़ों की चोटियों से उछलते-कूदते दो अन्य नाले भी मिलते हैं– एक सोलंग नाला और दूसरा कांगणी नाला। ढूंगरी और मनाली गांव के बीच से बहने वाला मनालसू नाला नीली आल़ नामक सरोवर से निकलता है। नीली आल़ से पश्चिम की तरफ एक खड्ड रावी में जा मिलती है और मनालसू नाला मनाली में व्यास में समाहित होता है। प्रीणी में हामटा से होते हुए अलेऊ नाला तथा जगतसुख में दुहांगन नाला बहता है। अलाईन-दुहांगन परियोजना ने इन दोनों नालों के जल को एक जगह इकट्ठा करके बिजली उत्पादन करना आरम्भ कर दिया है। दायीं ओर कनाल के साथ खनपरी सौर से एक नाला क्लाथ में व्यास में मिलता है। बायीं तरफ जगतसुख से आगे हरिपुर तथा छाकी नाला और दायें भाग में पतलीकूह्ल में बड़ाग्रां नाला तथा डोभी-द्वाड़ा में फोज़ल नाला व्यास के जलस्तर को बढ़ाने में सहायक होता है। इन सभी नालों पर कुछ छोटी-छोटी विद्युत परियोजनाएं विद्युत उत्पादन कर रही हैं और कुछ निर्माणाधीन हैं।

मनाली के आसपास की चोटियां

अब तक हिमाचल प्रदेश में लगभग 136 चोटियां चिह्नित की जा चुकी हैं। इनमें से अधिकांश कुल्लू, लाहुल-स्पिति, चम्बा, किन्नौर, सिरमौर, मण्डी तथा कांगड़ा में हैं। ये चोटियां 14000 फुट से लेकर 21500 फुट की ऊंचाई के मध्य अवस्थित हैं। मनाली के आसपास 5226 मीटर ऊंची नोरबू पीक, 6070 मीटर ऊंची मकर बेह, 6201 मीटर शिकर बेह और 5926 मीटर की ऊंचाई पर हनुमान टिब्बा प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त समुद्र तल से 4996 मीटर ऊंचा शिखर व्यास कुण्ड से साढ़े तीन किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। यहां पर वर्ष भर ग्लेशियर रहते हैं। यहां से बड़ा भंगाल का क्षेत्र तथा व्यास घाटी के दृश्य मनोहारी दिखाई देते हैं। यहां से 10 किलोमीटर की दूरी पर 3856 मीटर ऊंचा मैदान कैंप लगाने के लिए सर्वथा उपयुक्त है। 4000 मीटर की ऊंचाई पर जांगरी नाले के स्रोत–स्थल फूलन जोत पर पुहालों ने डेरा डाला होता है।

4988 मीटर की ऊंचाई पर टांगरी ग्लेशियर के एक तरफ मनाली-पास है, जहां से इन्द्रासन, देऊ टिब्बा और हुनमान टिब्बा सामने नज़र आते हैं। मनाली-पास से 8 किलोमीटर की दूरी पर निचली तरफ 4200 मीटर की ऊंचाई पर रानी सुई नामक जगह पर कुल्लू की एक रानी ने बड़ा भंगाल जाते हुए पुत्र को जन्म दिया था। इसी कारण इस स्थान का नाम रानी सुई पड़ा।

मनाली के ठीक सामने 5221 मीटर की ऊंचाई पर इन्द्रकील पर्वत है। इसका इन्द्रकील नाम क्यों पड़ा, इसके बारे में कहा जाता है कि एक समय में सारे पहाड़ पंखों वाले हुआ करते थे और इधर-उधर उड़कर जहां इच्छा हुई बैठ जाते थे। जिससे पृथ्वी के निवासी, ग्राम, नगर, गोचर और अन्य प्राणी कुचल जाया करते थे। यह देखकर इन्द्र ने अपने वज्र का आह्वान किया। तब वज्र ने सारे पर्वतों के पंख तो काट दिए, परन्तु शबरी पर्वत के पंख पूर्ववत् बने रहे। देवी के प्रताप से वज्र वहां न जा सका। यह देख कर इन्द्र बहुत चकित हुआ। तब वह उस स्थान पर आया, जहां शबरी के रूप में मां पार्वती विराजमान थीं। उसने देवी के चरणों पर सिर रखकर, हाथ जोड़कर प्रार्थना की। इन्द्र द्वारा स्तुति किए जाने पर देवी ने इस पर्वत को कीलने अर्थात् स्थिर करने की आज्ञा दे दी। तब से यह पर्वत इन्द्रकील के नाम से जाना जाने लगा। कुलान्त पीठ महात्म्य में इन्द्रकील पर्वत के लिए लिखा है—

कीलितो शैलराजोऽयं इन्द्रेणच महात्मना।
इन्द्रकीलं च विख्यातं त्रिषु लोकेषु विश्रुतः।।

इन्द्रकील से थोड़ी दूर 6001 मीटर की ऊंचाई पर देऊ टिब्बा है जिसे इन्द्रासन भी कहते हैं। चूंकि इन्द्र देवताओं के राजा हुए हैं, इसलिए यह सम्भव है कि इस इन्द्रासन पर बैठकर वह अपना राज-काज चलाते रहे हों। हिमालय के पश्चिम में स्थित इन्द्रासन का वर्णन ऋग्वेद की ऋचाओं में सबसे अधिक हुआ है।

मनाली से ही पूर्व की ओर चन्द्रखणी पर्वत नज़र आता है। यहां पर देवता जमलू ने ठारह करडू देवताओं को लाकर कुल्लू के विभिन्न गांवों में अवस्थित होने के लिए प्रेरित किया था। चन्द्रखणी में लोग धरती माता को नमन करते हुए पत्थर की लम्बी-लम्बी शिलायें खड़ी करते हैं। यहां से दक्षिण की ओर लगभग दो किलोमीटर की दूरी पर एक समतल स्थान पर रूमटू सौह है। माना जाता है कि यहां पर देवासुर संग्राम हुआ था, जिस में देवताओं को विजय प्राप्त हुई थी। रूमटू सौह में एक छोटा सा तालाब है, जिसके जल

में औषधीय गुण विद्यमान हैं। चन्द्रखणी से एक किलोमीटर उत्तर की तरफ चलने के बाद सीधी उतराई है। इस कठिन उतराई में संभल कर चलते हुए ही मलाणा गांव पहुंचते हैं।

विद्वानों ने मनाली के सामने हेमकूट पर्वत शिखर का कुल्लू में होना सिद्ध किया है। ब्रह्माण्ड पुराण की एक पीठिका का नाम कुलान्त पीठ है। ए. एफ.पी. हारकोर्ट, जो कुल्लू का असिस्टैंट कमिश्नर था, ने 1871 में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'कुल्लू लाहुल एण्ड स्पिति' में कुलान्तपीठ का संदर्भ देते हुए कहा है कि यह वर्तमान कुल्लू की सीमा से किंचित् भिन्न है। उस समय की सीमा पर प्रकाश डालते हुए 'आर्क्योलोजिकल सर्वे ऑफ इंडिया' के अध्यक्ष डॉ. हीरानन्द शास्त्री ने 1907–08 की प्रकाशित रिपोर्ट में लिखा है– 'कुलान्त पीठ क्षेत्र जालन्धर के उत्तरपूर्व और हेमकूट पर्वत के दक्षिण में स्थित है। यह दस योजन लम्बा और तीन योजन चौड़ा है। व्यास का पवित्र स्थान इसके उत्तर में है और बन्धक पर्वत इसके दक्षिण में स्थित है। व्यास नदी इसके पश्चिम में बहती है और पशुपति इसके पूर्व में है। वादी की मुख्य देवी शबरी है, इन्द्रकील प्रमुख पर्वत शिखर है, व्यास और पार्वती नदियों का संगम पवित्र स्थल है।' इसी क्षेत्र में शिव ने शबर के वेश में अर्जुन के साथ युद्ध किया था। यही स्थिति कुलान्त पीठ महात्म्य में इस प्रकार कही गई है :–

जलन्धरस्योत्तरे पूर्वे हेमकूटस्य दक्षिणे।
दशयोजन विस्तीर्ण योजनत्रयविस्तृतम्।।
उत्तरे व्यास तीर्थस्य दक्षिणे बंधको गिरिः।
विपाशा पश्चिमे भागे पूर्वे पशुपतिः स्वयं।
अधिष्ठात्री च शबरी इन्द्रकीलं च पर्वतम्।।

इस संदर्भ में विद्वानों ने हेमकूट को वर्तमान हामटा माना है, जो कुल्लू प्रीणी होते हुए लाहुल–स्पिति के पैदल मार्ग पर पर्वत के ऊपर स्थित है। हामटा नाम से गांव मूल स्थान से बहुत नीचे बस गया है। हचीसन व वोगल का मानना है कि पीर पंजाल कुल्लू की उत्तरी सीमा है, जो इसे लाहुल से जुदा करती है। हेमकूट उसी पर्वत श्रृंखला को दर्शाता है। स्पष्ट है कि हेमकूट वही प्राचीन स्थान है जो आजकल हामटा नाम से जाना जाता है और जहां मनु की नाव हिमालय पर आकर सबसे पहले रुकी थी।

वन एवं वन्य प्राणी

मनाली के आसपास घने जंगल हैं जिनमें रई, तोस, खरशू, रखाल,

मोहरू, बान, देवदार, कायल, खनोर, अखरोट, सफेदा आदि के पेड़ हैं। मनाली वन क्षेत्र कुल्लू वनमण्डल के अन्तर्गत आता है। इसमें मनाली, नग्गर और पतलीकूहल तीन वन परिक्षेत्र हैं, जहां वन परिक्षेत्राधिकारी बैठते हैं। मनाली वन परिक्षेत्र में 197.08 एकड़ सुरक्षित वन, प्रथम श्रेणी डी.पी.एफ. 692.44 एकड़, द्वितीय श्रेणी डी.पी.एफ. 12519 एकड़, नया डी.पी.एफ. 457.21 एकड़, 3000 मीटर से नीचे यू.पी.एफ 1610.42 एकड़ भूमि वन क्षेत्र के अधीन है। नग्गर वन परिक्षेत्र में प्रथम श्रेणी डी.पी.एफ. 1317.71 एकड़, द्वितीय श्रेणी डी.पी.एफ. 7836.92 एकड़ तथा 3000 मीटर से नीचे यू.पी.एफ. 2470.245 एकड़ वन भूमि है तथा पतलीकूहल वन परिक्षेत्र में प्रथम श्रेणी डी.पी.एफ. 23.88 एकड़, द्वितीय श्रेणी डी.पी.एफ. 8258.72 एकड, और नया डी.पी.एफ. 5637.80 एकड़ भूमि वन क्षेत्र है। मनाली वन परिक्षेत्र में मनाली, वशिष्ठ, कोठी और पलचान ब्लॉक हैं जिनके अन्तर्गत मनाली, शलीन, गोशाल, वशिष्ट, अलेऊ, प्रीणी, कोठी, माठीवन, कांगनी, पलचान, शनाग बीटों में वन रक्षक तैनात हैं। इसी तरह पलचान चैकपोस्ट में भी वन रक्षक तैनात है। नग्गर वन परिक्षेत्र में नग्गर, हलाण, खखनाल ब्लॉक तथा नग्गर, रूमसू, जाणा, नथान, हलाण, सरसेई, बटाहर, बरशाई, खखनाल, जगतसुख, सजला बीट आती हैं। इसी तरह पतलीकूहल वन परिक्षेत्र में कटराई और फोजल ब्लाक शामिल हैं। इनमें पनकोट, पतलीकूहल, बड़ागढ़, नेरी, फोजल तथा मण्डलगढ़ बीटों में वनरक्षक तैनात हैं। मनाली में 4 ब्लॉक तथा 11 बीट, नग्गर में 3 ब्लॉक तथा 11 बीट और पतलीकूहल में 2 ब्लॉक व 6 बीट हैं। इन तीनों वन परिक्षेत्रों में कुल वन क्षेत्र 41020 एकड़ है।

वर्तमान मनाली बाज़ार के पास किसी समय दाना बिहाल और सियाल बिहाल में कांटेदार झाड़ियां हुआ करती थीं। इसमें सन् 1884 में पहली बार वृक्षारोपण हुआ। सन् 1888 व 1889 में रिज़र्व/3 दाना बिहाल के 27 एकड़ के रकबे में पौधरोपण किया गया तथा रिजर्व/4 बिहाल के 61 एकड़ के रकबे में पौधरोपण करके इनको तारबंद किया गया। सन् 1926 की गणना के अनुसार रिजर्व/3 दाना बिहाल के 27 एकड़ के रकबे में 77582 वृक्ष खड़े थे।

सन् 1903 में यहां डफडम्बर नाम से पहला डाकघर खुला। सन् 1911 में यहां एक डाक बंगला बनाया गया, जो वर्तमान में सर्किट हाऊस है। इसी में भारत के प्रथम प्रधानमंत्री स्व. पंडित जवाहरलाल आकर ठहरते थे। सर्किट हाऊस के आसपास पुराने वृक्ष अभी भी खडे हैं, जिनमें कुछ तो ठूंठ हो चुके

हैं। यहां पर Gink Go Biloda नाम का फॉसिल वृक्ष अभी भी है। पुराने समय में चीन में लामा लोग मठ के चारों ओर इस पेड़ को लगाया करते थे। इसके 5 पेड़ दार्जिलिंग में और एक पेड़ मनाली में है।

मनाली में सामान्यतः 1459.2 मिलीमीटर वर्षा होती है। इसमें भी 41 प्रतिशत मानसून में होती है। वर्षा पर्याप्त मात्रा में होने के कारण वनों से भरपूर जल उपलब्ध होता है। मनाली में जून मास में सबसे अधिक गर्मी होती है। वर्तमान में अधिकतम 26.06 डिग्री तथा न्यूनतम तापमान 12.04 डिग्री सेंटीग्रेट रहता है। जनवरी मास जो यहां सबसे ठण्डा होता है, में औसत तापमान अधिकतम 10.1 डिग्री सेंटीग्रेट और न्यूनतम 1.8 डिग्री सेंटीग्रेट तक रहता है। यह क्षेत्र चारों ओर पहाड़ियों से ढका हुआ है, इसलिए यहां पर रोहतांग की ठण्डी हवायें चलती हैं। रोहतांग में तो गर्मियों में भी हड्डियां कंपा देने वाली हवायें चलती रहती हैं।

मनाली के आसपास की ऊँचाई वाली चरागाहों तथा वन क्षेत्रों में वन्य-प्राणियों में कौर्थ या थार बकरी, घोरल, टंगरोल (आईबैक्स), काला रीछ, लाल भालू, एम्बरू (एन्टीलोप), मियांटू, भराल, कक्कड़, पहाड़ी तेंदुआ, गूणी (लंगूर), शियाण, (स्नो लैपर्ड), बाघ, हिमबाघ, वन विडाल, पहाड़ी भेड़िया आदि जंगली जानवर रहते हैं।

पक्षियों में मोनाल, करड़ी (मादा मोनाल) के अतिरिक्त खुआकटा (कोकता), कलेशा, वन मुर्गा, वन तीतर, काला तीतर, चिकरू, हिम तीतर, चकोर, सफेद चकोर, घुघु, हिम कबूतर, भुजली, उल्लू, हिमालयी बुलबुल, कठफोड़वा, छिंछला, घुघती, शियारी, कोयल आदि पक्षी यहां पाए जाते हैं। मांसाहारी पक्षियों की भी यहां कई किस्में देखने को मिलती हैं। इनमें एक शीण (संस्कृत में श्येन) है जो भेड़ों के छोटे मेमनों को भी उठा कर ले उड़ता है। गरुड़ और बाज़ भी मोनाल जैसे बड़े पक्षियों का शिकार करते हैं। शिकारी पक्षी बागर-पोक हवा में बिना पंख फड़फड़ाए एक जगह स्थिर रहकर सांप, छिपकली आदि रेंगने वाले जंतुओं को देखता रहता है और तीव्र गति से झपट कर पंजों में उठा कर ले उड़ता है। इसी श्रेणी की ईल और इलकण जैसी गिद्धें आकाश में कई किलोमीटर ऊपर उड़ती हुई, भूमि पर पड़े हुये मरे पशुओं को स्पष्ट देखती हैं और वायु में तीक्ष्ण गति से उड़ती हुई तुरन्त वहां पहुंचती हैं। चरागाहों में पशुपालकों की तरह सीटी बजाने वाला पक्षी पुहाल-चीड़ी बहुतायत में मिलता है।

पुराने समय में इस क्षेत्र में रहने वाले पशु-पक्षियों से लोग कई प्रकार की ज़रूरतें भी पूरी किया करते थे। सन्निपात, निमोनिया आदि बीमारी में सुई की नोक से कस्तूरी निकाल कर दूध के साथ पिलाई जाती हैं। घोरल की खाल की नाड़ियां (जुंगड़े और हल को बांधने वाला रस्सीनुमा यन्त्र) बनती थीं। कक्कड़ की खाल ढोल-नगारों को मढ़ने के लिए प्रयुक्त होती है। टंगरोल (एक वन्य-मेढ़ा) के तीन-चार फुट लम्बे सींगों के साथ अनेक वन्य पशुओं के सींग लोगों के घरों की दीवारों तथा हिडिम्बा मंदिर की दीवारों पर टंगे आज भी देखे जा सकते हैं। पशुओं की खालें बिछाने के काम आती थीं। मोनाल पक्षी की कलगी लोकनृत्य में नर्तकों के टोप के ऊपर आज भी सजावट व सम्मान का प्रतीक है।

शिक्षा व्यवस्था

मनाली में पहली प्राथमिक पाठशाला सन् 1907 में पंडित सुखचैन द्वारा चलाई गई। सन् 1925 में इसे लोअर मिडल स्कूल बनाया गया, परन्तु विद्यार्थियों की संख्या कम होने के कारण सन् 1935 में इसे दोबारा प्राईमरी स्कूल बना दिया गया। सन् 1958 में तत्कालीन प्रधानमंत्री स्व. जवाहरलाल नेहरू ने इसी पाठशाला के प्रांगण में जनसभा को सम्बोधित किया था। सन् 1959 में इसे हाई स्कूल का दर्जा प्राप्त हुआ। मनाली में सन् 1933 में एक आयुर्वेदिक औषधालय की स्थापना हुई। सन् 1935 में लार्ड और लेडी बिल्डंटन ने मिशन अस्पताल की स्थापना की जो आज भी चल रहा है।

1986 की नई शिक्षा नीति के तहत मनाली हाई स्कूल को वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय बनाया गया। वर्तमान में मनाली, बाहंग, जगतसुख, हरिपुर नग्गर, पतलीकूह्ल तथा पनगां में वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय, हरिपुर में महाविद्यालय और नग्गर शिक्षा खण्ड के अन्तर्गत 97 प्राथमिक पाठशालाएं हैं। इसके अलावा डे स्टार स्कूल, डी.ए.वी. स्कूल, दिल्ली पब्लिक स्कूल, सरस्वती विद्यामंदिर आदि बहुत से निजी स्कूल भी शिक्षा प्रदान कर रहे हैं।

द्वितीय अध्याय

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

ऋग्वेद की एक ऋचा में कहा गया है कि आरम्भ में न सत था, न असत था, न भूमि थी, न आकाश था, न वायु थी, न दिन था, न रात थी, न मृत्यु थी, न अमृतत्त्व। वहां केवल तदेकं (ब्रह्म) था, हिरण्यगर्भ अर्थात् सोने का अण्डा था। हिरण्यगर्भ में महाद्वीप, सागर, पर्वत, उपग्रह, सुर, असुर, मानव थे। तपसा महिमा अर्थात् तप की महिमा से यह अण्डा आरम्भ में केवल दो विभागों में विभक्त हो गया। एक पृथ्वी, एक आकाश, बीच में वायुमण्डल और साथ ही स्वयंभू ब्रह्मा प्रादुर्भूत हुए। प्रादुर्भूत होने के बाद ब्रह्मा चिन्तित हुए कि सृष्टि का निर्माण होना चाहिए। सबसे पहले नियम और सिद्धांत होने चाहिएं। नियम से पूर्व अनियमित सृष्टि कैसे? इसलिए ब्रह्मा ने तप और चिन्तन करके सबसे पहले ऋत और सत्य का निर्माण किया–

ऋतंच सत्यं चाभीद्धात् तपसोऽध्यजायत्
ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः।
समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत
अहोरात्राणि विदधत् विश्वस्यमिषतो वशी।
सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्
दिवं च पृथिवींच अंतरिक्षमथो स्वः।

ऋक्--10.190.1–3

तब रात्रि पैदा हुई, फिर अनेक लहरों वाला समुद्र हुआ। फिर उनमें से दिवस, समय, चन्द्र, संवत्सर पैदा किए। उसने सूर्य-चन्द्र जैसे पहले थे, वैसे पैदा किए, पृथ्वी और अंतरिक्ष पैदा किए। इस तरह सृष्टि की रचना तो हुई परन्तु मानव जाति की रचना अभी भी नहीं हो पाई। इसके सृजन के लिए ब्रह्मा को अनेकों वर्ष लग गए। अन्ततः मानव जाति की रचना के लिए चिन्तित सर्वशक्ति सम्पन्न ब्रह्मा ने अपने आपको, अपने मनस को दो भागों में विभक्त किया। दक्षिण भाग से पुरुष को और वाम भाग से नारी को उत्पन्न किया। इन

दोनों के सहयोग से जो पहला मानव पैदा हुआ, वह मनु स्वायंभुव था। इसी स्वायंभुव से सभी सुर, असुर, महर्षि और मनुष्य पैदा हुए।

आदि मनु ब्रह्मा के मानस पुत्र थे जो स्वायंभुव पैदा हुए, परन्तु बाद के सारे मनु सृष्टि के मानव या सृष्टि की किसी शक्ति से उत्पन्न हुए हैं। उनके लिए सृष्टि पहले से ही विद्यमान थी। प्रथम मनु स्वायंभुव से छठे मनु चाक्षुष तक एतद्पूर्व हो चुके हैं। वर्तमान में श्वेतवराह कल्प का सातवां मन्वन्तर चल रहा है, जिसके प्रवर्तक सातवें मनु वैवस्वत का मनाली से सीधा सम्बन्ध स्थापित होता है। यह कलियुग के मनु भी कहे जाते हैं। इनका पूर्व के मनु की वंशावली से कोई सम्बन्ध नहीं है। यह विवस्वान् अर्थात् सूर्य-पुत्र हैं। सर्पराज शेषनाग की शय्या पर लेटे विष्णु की नाभि से कमल उपजा है। कमल फूल पर चतुर्मुखी ब्रह्मा विराजमान हैं। उनसे उनका मानसपुत्र मरीचि पैदा हुआ। मरीचि की पत्नी दक्षपुत्री से कश्यप उत्पन्न हुए। कश्यप और उनकी पत्नी अदिति से विवस्वान् और उनसे वैवस्वत मनु उत्पन्न हुए। भागवत पुराण में इसे श्राद्ध देव मनु कहा गया है।

विभिन्न पुराणों और महाभारत के आख्यानों के अनुसार महाप्रलय के बाद भारी जलप्रवाह पर से गुज़रती नाव हिमालय के जिस शिखर पर आकर रुकी, उसका नाम हेमकूट बताया गया है और बाढ़ के जल के कुछ उतरने के बाद जहां नौका बांधी गई, उसका नाम नौबन्धन था।

वैवस्वत मनु ने मनाली से सृष्टि का पुनर्जीवन आरम्भ किया। वैवस्वत मनु का मूल कार्य सृष्टि रचना नहीं, वरन् मानव जाति का सृजन था। उसके सामने भूमि थी, आकाश था, अंतरिक्ष, चांद-तारे, दिन-रात और समुद्र था। मत्स्य जो विष्णु अवतार थी, ने मनु को बाढ़ से सचेत किया था। मनु ने उसके आदेशों का पालन करते हुए एक नौका बनाई। उसमें सम्पूर्ण वनस्पतियों के बीज और परागकणों के जोड़े सुरक्षित किए और जब महाप्रलय का समय आया, तो मनु ने उसी मछली के सींग के साथ, जो अपने पूर्व वचनों के अनुसार वहां पहुंच चुकी थी, शेष नाग की रस्सी बनाकर नौका को बांधा। अत्रि, कश्यप, गौतम, जमदग्नि, भरद्वाज, वसिष्ठ और विश्वामित्र आदि सप्तर्षि भी आकर नौका में बैठ गए। सारी पृथ्वी, भू, भुवः आदि सम्पूर्ण लोक जलमग्न हो गया। मछली नौका को खींचती हुई उत्तर हिमालय पर्वत की ओर हेमकूट पर ले आई। जलप्लावन के प्रलय सागर में मनु की नाव को मत्स्य अवतार भगवान सम्भाले हुए थे। हामटा जोत (हेमकूट) पर मनु और सप्त ऋषियों के नाव से उतर जाने पर

मत्स्य भगवान भी नाव से अलग हो गए और उन्होंने पानी के भीतर माछंग गांव में विश्राम किया। विष्णु के आदेशानुसार मनु ने अपनी नौका को हिमालय के एक शिखर नाव प्रबन्धन से बांधा। जब समुद्र का पानी नीचे उतरा तो मनु ने सब कुछ नष्ट हुआ पाया। सुनसान, वीरान, निर्जन सन्नाटे के सिवा कुछ नहीं था। तब उसने सबसे पहले यज्ञ किया। इस यज्ञ अग्नि हवि से श्रद्धा नाम की स्त्री प्रादुर्भूत हुई, उससे उसने विवाह किया। उनसे इला नाम की पुत्री उत्पन्न हुई, मनु महाराज कुछ समय तक अपनी बेटी इला के साथ मनाली से दो किलोमीटर उत्तर-पूर्व में व्यास के दूसरे छोर पर रहे। वैवस्वत मनु ने अपने इस मन्वन्तर में मानव सृष्टि का संचालन किया है, अतः उन्हें ही सृष्टि नारायण माना जाता है। इला से ही इस स्थान का नाम अलेऊ पड़ा और यहां पर सृष्टि नारायण का मंदिर उनके यहां पर रहने की पुष्टि करता है।

यह विश्वास किया जाता है कि बाढ़ का पानी हिमालय शिखरों –हेमकूट अर्थात् हामटा, इन्द्रकील तथा नाव प्रबन्धन तक चढ़ा होगा और इसके धीरे-धीरे नीचे उतरने से जो भाग सबसे पहले बसा होगा या मनु द्वारा बसाया गया होगा, उसे कुलान्त पीठ की संज्ञा दी गई होगी। क्योंकि तब तक आर्य कुल का अन्त हो चुका था। कुलान्त पीठ का जो क्षेत्र दर्शाया गया है, वह अधिक विशाल भी नहीं है। वह हामटा से लेकर पार्वती व्यास के संगम तक फैला है। वास्तव में कुलान्त पीठ का अर्थ है वह पीठ अर्थात् भूभाग जो महाजलप्रवाह के कारण पानी में डूब जाने के बाद फिर पानी के सूख जाने पर पहली बार उभर कर स्थापित हुआ। अर्थात् एक बार कुल के अन्त होने पर पुनः स्थापित हुआ।

महाप्रलय के बाद मनु ने मानवजाति के पुनर्सृजन के लिए मनाली में घर बसाया। इसलिए उसे मनुआलय कहा गया, जो कालान्तर में मनाली नाम से विख्यात हुआ। लोक साहित्य एवं संस्कृति के प्रसिद्ध विद्वान मौलूराम ठाकुर का मानना है कि हिमाचल में आदि पुरुष मनु के जन्मदाता ब्रह्मा का आदि स्थान ब्रह्मपुर रहा होगा, जो आज चम्बा ज़िले में भरमौर के नाम से प्रचलित है। यहां आज भी ब्रह्मा की अर्धांगिनी ब्रह्माणी देवी का मंदिर विद्यमान है। कुल्लू से 7 किलोमीटर दक्षिण की तरफ खोखण गांव में आदि ब्रह्मा का होना भी सृष्टि की रचना से सम्बन्ध रखता है।

कुल्लू में विहंगमणिपाल का राज्य स्थापित होने से पहले छोटे-छोटे राणे-ठाकुरों का शासन था। ये ठाकुर व राणे एक, दो या दो से अधिक गांवों

के अधिपति हुआ करते थे। इनका अपना शासनतंत्र था। इनमें से कई निरंकुश भी थे, जिन्हें आम जनता को विभिन्न तरीकों से सताने में मज़ा आता था। इनमें पिती ठाकुर का नाम विशेष रूप से लिया जाता है। कहते हैं कि वह नवप्रसूता स्त्री का दूध पीता था। इसी तरह निरमण्ड की देवी अंबिका की भारथा में भी वर्णन हुआ है कि सभौर का राणा भी प्रसूता महिला के दूध की खीर बनाकर खाता था।

पिती ठाकुर को मारने के बाद विहंगमणिपाल ने अपना शासन स्थापित किया तो उसने धीरे-धीरे स्थानीय ठाकुरों को एक-एक करके अपने अधीन करना आरम्भ किया। उनके बाद उनके वंशजों ने भी यही प्रक्रिया जारी रखी। फिर भी दूर-दराज़ तथा ऊंचे स्थानों पर बसे राणा-ठाकुरों को वे अपने अधीन नहीं कर सके। ऐसा ही मनाली गांव का झीणा राणा था। झीणा राणा का एक गढ़ मनाली गांव और दूसरा पीछे की तरफ पहाड़ी पर मंजनकोट में था। वह गर्मियों में मनाली के गढ़ में और सर्दियों में मंजनकोट में रहता था। व्यास के दोनों तरफ जगतसुख से ऊपर कोठी गांव तक उसका आधिपत्य था। वह लोगों में बहुत प्रिय था, इसलिए कुल्लू के राजाओं द्वारा उसे हराना आसान नहीं था। सोलहवीं शताब्दी में कुल्लू के राजा सिद्ध पाल, ने पाल के स्थान पर अपने नाम के आगे सिंह लगाना आरम्भ किया था क्योंकि उसने एक सिंह को मल्लयुद्ध मैं मार गिराया था। इसीलिए उसका नाम सिद्ध सिंह पड़ा। उसने मनाली के झीणा राणा को मारने के प्रयत्न आरम्भ किए, परन्तु वह सफल नहीं हो पा रहा था। प्रेम और युद्ध में सब कुछ जायज़ होता है। राजा सिद्ध सिंह भी राणा झीणा को मारने के उपाय ढूंढ रहा था। तभी किसी ने उसे झीणा राणा और उसके राज्य के तीरन्दाज़ तुलसु मुछियाणी साईस के बारे में बताया कि मूंछें रखने के कारण झीणा राणा तुलसु मुछियाणी से नाराज़ चल रहा है। कहते हैं कि मुछियाणी साईस ने अपनी मूंछों को बढ़ा दिया था। उसकी मूंछें सात मुट्ठी के बराबर लम्बी थी। मूंछों के कारण ही राणा नाराज़ था कि उसका दास उसकी इच्छा के बिना कैसे इतनी बड़ी मूंछें रख सकता है। उसने मुछियाणी को अपनी मूंछें काटने को कहा, परन्तु वह नहीं माना। तब एक दिन राणा ने उसे बुलाकर कहा, 'तू बहुत बड़ा तीरन्दाज़ बनता है। यदि तू बैल के ऊपर बैठी चिड़िया को बिना बैल को छुए एक ही तीर से मार गिरायेगा तभी तुझे मूंछें रखने की अनुमति होगी, वरना तुझे मृत्यु-दंड दिया जाएगा।' बैल के ऊपर बैठी चिड़िया को मारना आसान नहीं था। साईस मुछियाणी ने राणा की

शर्त स्वीकार कर ली। राणा ने सोचा था कि मुछियाणी बैल के ऊपर बैठी चिड़िया को नहीं मार पाएगा। अतः इसकी मौत निश्चित है परन्तु मुछियाणी ने एक ही तीर से बैल पर बैठी चिड़िया को मार गिराया। शर्त के अनुसार उसे मूंछें रखने की इजाज़त मिल गई। इस घटना के बाद मुछियाणी और राणा की रार और बढ़ गई।

राजा सिद्ध सिंह जिसे राजा बधानी भी कहते थे, ने इसी दुश्मनी का लाभ उठाने का निर्णय लिया। उसने साईस मुछियाणी को उचित इनाम के बदले राणा झीणा को मारने के लिए राज़ी कर लिया। सिद्ध सिंह के कहने पर तुलसु मुछियाणी ने कमाणु तथा रामवन के खेतों का काम देख रहे झीणा राणा पर छिप कर तीर चलाया, जो उसकी रान पर लगा और वह उसी अवस्था में घोड़े पर सवार होकर मंजनकोट की ओर भागा। प्यास से बेहाल राणा जब वराकोट के चश्मे पर पानी पीने के लिए रुका तो वहीं घोड़े से गिर कर उसकी मौत हो गई। घोड़ा जब उसके बिना ही मंजनकोट पहुंचा, तब रानियों को उसकी मौत का पता चला। उसकी एक गर्भवती रानी को छोड़कर शेष सभी रानियां उसी के साथ सती हो गईं। तुलसु मुछियाणी की पत्नी भी मंजनकोट में दासी का काम करती थी, वह भी उन्हीं के साथ सती हो गई। झीणा राणा की गर्मियों की राजधानी के गढ़ के खण्डहर मनाली गांव में आज भी विद्यमान हैं। वादे के मुताबिक राजा सिद्ध सिंह ने तुलसु मुछियाणी को शनाग गांव में इनाम के रूप में ज़मीन दी थी।

झीणा राणा की गर्भवती पत्नी मंजनकोट से निकल कर छुपते-छुपाते एक गांव से दूसरे गांव में शरण लेती रही। उसने अलेऊ में एक शिशु को जन्म दिया, जिसके वंशज अब भी अलेऊ गांव में नवानी खानदान के नाम से रह रहे हैं।

किसी विवाद के चलते मंजनकोट में कुल्लू के राजा की चम्बा के राजा के साथ लड़ाई हुई थी। कहते हैं कि यह लड़ाई 12 वर्षों तक चलती रही। अंततः कुल्लू के राजा के पक्ष में फैसला हुआ था। इस खुशी में कोठी गांव में जश्न मनाया गया, जिसमें चम्बा की गद्दी सेना को भी आमंत्रित किया गया था। गांव जाने के लिए व्यास के ऊपर से होकर एक पुल से गुज़रना पड़ता था। पुल के नीचे बहुत गहरी खाई थी। कुल्लू के सैनिकों तथा गांव वालों ने एक षड्यंत्र के तहत पहले तो गद्दी सेना को सूर (कोदरा अन्न की मदिरा) पिलाई। उनके जाने से पहले पुल पर से तख़्ते हटा दिए गये और तख़्तों के स्थान पर भांग की सूखी डालियां बिछा दी गईं। गांव में ढोल नगाड़ों को

बजाया गया। सुरापान करने के बाद गद्दी सिपाही पुल पार करने लगे तो वे निकाले गए तख़तों के स्थान पर बिछी भांग पर से गहरी खाई में गिरते गए। ढोल नगाड़ों की आवाज़ के कारण उनकी चीखें पीछे वाले सैनिकों को सुनाई नहीं दे रही थीं। गद्दी सेना के साथ भी एक ढोल वाला बजंतरी था। जब वह ढोल वाला पुल से नीचे गिरा तो ढोल की आवाज़ बंद हो जाने के कारण पीछे वाले सिपाही चौकन्ने हो गए। वे पीछे हटने लगे परन्तु वहां भी कुल्लू के सैनिक तैयार खड़े थे, उन्होंने एक-एक करके उन सब गद्दी सिपाहियों को मार डाला। लोक विश्वास के अनुसार जिस स्थान पर यह पुल है, वहां गहरी खाई में उल्टे ढांक में काला पोजा नाम की ऐसी झाड़ी है, जो अमरत्व प्रदान करती है, परन्तु इस पोजे के पास पहुंचना असम्भव है।

कुल्लू राजवंश ने जगतसुख, और नग्गर से मनाली के विभिन्न गांवों के ठाकुरों को अपने अधीन करने के बाद मकराहड़ में अपनी राजधानी बनाई तथा रूपी सिराज और आउटर सिराज के ठाकुरों को अपने अधीन करते हुए राजा ज्ञान सिंह तक शासन किया। कुल्लू में सिख आक्रमण के बाद सन् 1846 में अंग्रेज़ों ने कुल्लू को अपने अधीन कर लिया। ज्ञान सिंह को राजा के स्थान पर राय की उपाधि देकर कुछ अधिकारों के साथ छः वज़ीरियों में से उसे केवल रूपी की वज़ीरी दी गई। स्वतंत्रता के बाद भी सन् 1971 तक रूपी वज़ीरी के राजस्व अधिकार कुल्लू राजवंश के राय महेन्द्र सिंह के पास रहे। स्वतंत्रता के बाद पंजाब में 1961 तक कांगड़ा ज़िला के अन्तर्गत कुल्लू एक उपमण्डल रहा। सन् 1961 में कुल्लू को ज़िला बनाया गया और सन् 1966 में राज्य पुनर्गठन के तहत कांगड़ा के साथ कुल्लू ज़िला हिमाचल प्रदेश में शामिल हो गया। उसके बाद मनाली को नग्गर का ब्लॉक बनाया गया और अब यह उपमण्डल मुख्यालय है।

तृतीय अध्याय

देव परम्परा

ब्रह्माण्ड में सबसे पहले पृथ्वी की उत्पत्ति हुई मानी जाती है। उसके बाद ईश्वर ने मनुष्य को बनाया, जिसका उल्लेख ठारह करडू की भारथा में इस प्रकार हुआ है–

निहार घोर थी, सेयी मेयी संसार थी,
सरगा न औलै धरती न पन्नै,
पृथी बणाई, माण्हू बणाए,
सूनै रै बणाए, वाक नी छूटी,
चांदी रै बणाए, वाक नी छूटी,
त्राम्बै रै बणाए, वाक नी छूटी,
आपणी चोई रै बणाए, ता वाक छूटी,
एकी न दूई हुए, दूई रै दस बणै,
दसै रै शौऊ हुए, शौऊए रै सहस्र बणै,
सहस्रै पृथ्वी भौरी।

अर्थात् घोर अन्धेरा था, संसार सृष्टि विहीन था। ईश्वर ने सबसे पहले पृथ्वी बनाई, मनुष्य बनाया। सोने से मनुष्य की मूर्ति बनाई। उससे आवाज़ नहीं निकली। फिर बारी-बारी से चांदी तथा तांबे का मनुष्य बनाया, तब भी आवाज़ नहीं फूटी। तत्पश्चात् उसने अपने शरीर की मैल से मनुष्य बनाया। तब जाकर मूर्ति से आवाज़ प्रस्फुटित हुई। एक से दो, दो से दस, दस से सौ, सौ से हज़ार और हज़ारों ने पृथ्वी को मनुष्य से भर दिया।

मनुस्मृति के प्रथम अध्याय के 24वें और 25वें श्लोक में देवताओं की उत्पत्ति के सम्बन्ध में इस प्रकार उल्लेख मिलता है–

कर्मात्मनां च देवानां सोऽसृजत्प्राणिनां प्रभुः।
साध्यानां च गणं सूक्ष्मं यज्ञं चैव सनातनम्।।
अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम्।
दुदोह यज्ञसिदध्यर्थमृग्यजुः साम लक्षणम्।।

अर्थात् सभी प्राणियों के अधीश्वर परमात्मा ने कर्मस्वभाव वाले अग्नि, वायु आदि देवों के साध्यों के सूक्ष्म समुदाय को और सनातन यज्ञ को उत्पन्न किया। इसके उपरान्त उस परमेश्वर ने यज्ञ की सिद्धि के लिए तीन देवों अग्नि, वायु और सूर्य को, क्रमशः ब्रह्ममय और सनातन तीन वेदों ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद को प्रकट किया। प्रत्येक देव परम त्रिमूर्ति का एक रूप है या उससे पैदा हुई सत् या उस पर आश्रित शक्ति है तथा प्रत्येक देवी विश्व शक्ति या परम शक्ति का एक रूप है।

जब से सृष्टि का निर्माण हुआ है, तब से ही यह भूमि चर्चा में रही है। यह भूमि मनुष्य के बसने योग्य भूमियों में सबसे उपयुक्त रही है। यहां के सुरम्य शांत वातावरण से प्रभावित होकर ऋषि-मुनियों, देवी-देवताओं ने भी मैदानों से यहां आकर तपस्या कर इसे अपना स्थायी निवास बनाया है।

व्यास घाटी के लोगों का प्रकृति के साथ गहरा सामंजस्य रहा है। यहां के लोक जीवन में धरती माता की पूजा-अर्चना की परम्परा रही है। पर्वत पूजन, जल पूजन, वृक्ष पूजन इत्यादि प्रक्रियाएं धरती पूजन की ही सूचक हैं। हमारे वाङ्मय में भी धरती पूजन का विधान है। नव गृह, मंदिर तथा सड़क आदि का निर्माण भूमि पूजन से ही होता है। अथर्व वेद की 63वीं ऋचा में धरती को मां कहा गया है-

माता भूमिः पुत्रोहं पृथिव्याः।
नमो माता पृथिव्यै नमो माता पृथिव्यै।।

अर्थात् हमारा अस्तित्व धरती माता के कारण ही है। अगर मां का अंग छलनी हो जाए और उसमें ऊर्जा शक्ति न रह जाए तो प्राणी जगत का पालन पोषण कैसे होगा। इसीलिए शास्त्रों में कहा है-

समुद्रवसने देवी पर्वतस्तनमण्डले।
विष्णुपत्नी नमस्तुभ्यं पादस्पर्शम् क्षमस्व मे।।

अर्थात् समुद्र रूपी वस्त्र धारण करने वाली, पर्वत रूपी स्तन वाली, भगवान विष्णु की पत्नी, हे पृथ्वी देवी! मैं तुझे नमन करता हूं। मेरे पैर का तुझे स्पर्श होने वाला है, इसलिए तू मुझे क्षमा कर।

यहां देवी-देवताओं के प्रकट होने के सम्बन्ध में फागली, बैसाख तथा विशेष उत्सवों में भारथा सुनाई जाती है। ये देवता कहीं पिंडी के रूप में उत्पन्न हुए हैं, कहीं खेतों में निराई-गुड़ाई करते हुए मुखौटे के रूप में, कहीं खेत में हल की नोक में फंस कर प्रकट हुए, कहीं कन्याओं के रूप में जन्म लेकर, कहीं पत्थर

पर प्रकट होकर, कहीं अण्डों के रूप में, कहीं साधु के रूप में आए हैं। एक गांव से नव विवाहिता के साथ दूसरे गांव में जाने से भी पूजित हुए हैं। कई देवी-देवताओं ने प्रकट होने के लिए श्रद्धालुओं के सपनों का सहारा भी लिया है।

देव भारथाओं में वर्णन आता है कि ये देवी-देवता या तो ऊंचे पहाड़ों से यहां आए या नीचे मैदानी क्षेत्रों के पाप से तंग होकर यहां आकर बसे हैं। अपना राज स्थापित करने के लिए इन्हें यहां के स्थानीय अधिपति को जुआ-पासा खेलकर हराना पड़ा है या किसी विशेष शर्त में जीतना पड़ा है। माना जाता है कि किसी समय यहां स्थान-स्थान पर राक्षसों का आतंक था। वे लोगों को गाहे-बगाहे अनुचित तरीकों से तंग किया करते थे। जब इन देवताओं ने उन दुष्ट प्रवृत्ति के शासकों को अपनी शक्ति से हराकर लोगों की सुख समृद्धि में हिस्सेदारी निभानी आरम्भ की तो उन्होंने इन्हें पूजना शुरू किया। परिणाम स्वरूप ये उन स्थानों या गांवों के रक्षक बनकर देव रूप में पूजे जाने लगे।

मनाली उपमण्डल की पूरी संस्कृति देवी-देवताओं के इर्द-गिर्द घूमती है। जन्म से लेकर अवसान तक प्रत्येक संस्कार तथा परम्पराओं में इनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। यहां के सभी रीति-रिवाज़ देवी-देवता की उपस्थिति में इनके आशीर्वाद से ही सम्पन्न होते हैं। खेत में हल चलाना हो, बीज बोना हो, फसल काटनी हो, गृह निर्माण करना हो, बच्चे का नामकरण करना हो तथा शादी-ब्याह करना हो, प्रत्येक अवसर पर देवता की अनुमति व उपस्थिति अनिवार्य होती है। देव आस्था के सहारे ही लोग जीवन में आने वाली मुश्किलों से जूझते हैं। अनिष्ट शक्तियों से गांव की रक्षा करने हेतु देवताओं द्वारा सुरक्षा फेरा लगाने की परम्परा यहां आम चलन में है। जहां परिवार व गांव की सुख समृद्धि में देवी-देवता सहायक होते हैं वहीं ये असाध्य रोगों से बचाव हेतु विभिन्न प्रकार के तांत्रिक अनुष्ठान भी करते हैं। देवी-देवताओं का वर्चस्व इतना अधिक है कि यहां हर घर का गृह देवता, कुल का कुल देवता, गांव का ग्राम देवता होता है। ये देवी-देवता लोगों के संगी हैं, साथी हैं, पथ प्रदर्शक हैं, सम्बल हैं, सहारा हैं एवं सर्वोपरि भगवान हैं। लोग इनके साथ बातचीत करते हैं, रूठते हैं, मनाते हैं और हर सुख-दुख में भागीदार बनते हैं। देवताओं और श्रद्धालुओं का आपस में इतना गहरा रिश्ता होता है कि ये अपने इष्ट देवता के साथ तू-तड़ाक करके बातें करते हैं। वास्तव में देवी-देवताओं से मानवीय रिश्ते स्थापित करना और ऊंचे आदर्श स्थापित

करने वाले मानवों को देवताओं की तरह पूजना यहां की अनूठी परम्परा का हिस्सा है।

ठारह करडू देवता

कुल्लू को ठारह करडुओं का देश कहा जाता है, जिसका वर्णन मनाली के पास चजोगा गांव में देवता आमल ऋषि की भारथा में होता है। करडू का अर्थ होता है करण्डी। रथों की यह शैली पुरातन है। अन्य सभी शैली के रथ बाद में बने हैं। करडू बांस से बनी लगभग डेढ़ फुट के व्यास की गोल डेढ़ फुट ऊंची टोकरी होती है, जिस के अन्दर देवता के मुखौटे, घण्टी व धड़छ रखे रहते हैं। साथ ही फूल आदि भी रखे जाते हैं। करडू के ऊपर चारों ओर एक से लेकर पांच तक चांदी के छत्र लगाये हुए होते हैं और बाहर से इसे लाल, पीले, हरे रंग के कपड़ों से ढका जाता है।

एक कथा के अनुसार जमलू देवता ने ठारह करडुओं को यहां लाकर स्थापित किया है। देवता जमलू अपने साथ करडू में ठारह देवताओं की प्रतिमाएं उठाए हुए हिमालय से स्पिति के रास्ते लाहुल के देवता घेपन तथा बरशैणी के देवता जगथम के साथ हामटा होते हुए चंद्रखणी चोटी पर पहुंचे तो भयंकर आंधी से टोकरी में विद्यमान सभी देवता उड़ गए और कुल्लू के विभिन्न भागों में स्थापित हुए।

स्व. लालचंद प्रार्थी ने *कुलूत देश की कहानी* में लिखा है कि एक बार जमदग्नि ऋषि अपने साथ एक करडू में अठारह देवताओं की मूर्तियां लेकर मानसरोवर और कैलाश पर्वत की परिक्रमा करके स्पिति और हामटा होते हुए चंद्रखणी पर्वत शिखर पर रुके। तभी चंद्रखणी की दूसरी ओर मलाणा के शासक बाणासुर को अपने शत्रु के आने का संकेत मिला और उसने पर्वत शिखर पर आकर जमलू को ललकारा। उनमें काफी द्वंद्व हुआ। बाणासुर जमलू को परास्त नहीं कर सका परन्तु उसने करडू के भीतर रखी देवताओं की मूर्तियों को भारी आंधी और तूफान द्वारा उड़ा दिया और वे मूर्तियां जहां-तहां गिरकर देवता रूप में प्रतिष्ठित हुईं। यही बाद में ठारह करडू देवता कहलाए।

यह भी मान्यता है कि अठारह वैदिक देवता अन्तरिक्ष से इंद्रकील पर्वत होकर कुल्लू और स्पिति के बीच के पठार पर उतरे। ये सब जलप्रलय के बाद नवीन सृष्टि की रचना के लिए अंतरिक्ष से इस क्षेत्र में उतरे।

चजोगी में आमल ऋषि के मंदिर में फागली के अवसर पर देवता का गूर अपनी भारथा में कुछ देवताओं के नामों का ज़िक्र करता है। स्व. उधो राम

अवस्थी ने दशहरा स्मारिका 1995, सतपाल भटनागर ने कुल्लू का इतिहास एवं संस्कृति नामक पुस्तक तथा स्व. भगतराम अरण्य ने भृगुतुंग अंक दो में चजोगी के आमल ऋषि की फागली में वर्णित देवताओं की सूची ठारह करडू मानकर इस प्रकार प्रकाशित की है– आनी में शमशरी महादेव, बागी बंजार में सकीर्नी, दियार में त्रिजुगीनारायण, कसोल में कसोली नारायण, बरशैणी में जगथम, पीणी में भागासिद्ध, गाहर में सिंहमल, बनोगी में गिरमल, धारा में थिरमल, सोयल में अजिमल, जाणा में जीवनारायण, चजोगी में आमल, मलाणा में जमलू, रूमसू में शुभ नारायण, हलाण में हौरशू नारायण, शलीण में शांडिल, मनाली में मनु तथा गोशाल में गौतम ऋषि।

जिन देवताओं की सूची इन विद्वानों ने दी है, केवल वे ही ठारह करडू नहीं हो सकते, और भी दूसरे देवता हैं जो कि बहुत प्राचीन हैं, जैसे आदि ब्रह्मा खोखन, बिजली महादेव, भेखली देवी, नारद, दुर्वासा ऋषि आदि। इसलिए यह सूची तर्कसंगत नहीं लगती। जो देवता सूची में हैं, इनमें कहीं भी ऊपरलिखित देवताओं का वर्णन उनकी भारथा में नहीं होता। यह माना जाता है कि जमलू ऋषि ठारह करडू को जगथम के साथ अपने कंधे पर उठाकर लाए थे तो ऐसी स्थिति में वे स्वयं टोकरी में अवस्थित ठारह करडुओं में कैसे स्थान पा गए। यह प्रश्न भी विचारणीय है। जगथम इनके साथ चल कर आये थे तो उनका नाम इस सूची में नहीं आना चाहिए। मलाणा में ठारह करडू का अलग से मंदिर है जबकि जमलू देवता का भंडार व स्थान अलग बना हुआ है। अगर जमलू ठारह करडुओं में होता तो ठारह करडू का अलग से मंदिर बनाने की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए थी।

हिन्दू मान्यता के अनुसार अठारह पुराण, गीता के अठारह अध्याय, महाभारत के अठारह पर्व, ईशोपनिषद् की अठारह ऋचाओं से अठारह के अंक की महत्ता प्रदर्शित होती है। कुल्लू में 18 का अंक विभिन्न श्रेणी के देवताओं में भी प्रचलन में है। जैसे–18 नाग, 18 नारायण, 18 पेड़े इत्यादि। देवपूजा में प्रयुक्त झूण में 18 ताल बजाने की परम्परा है।

ठारह शब्द कुल्लुई में अनगिनत के लिए प्रयुक्त होता है। इसका उदाहरण यहां की कहावतों में किया जाता है जैसे–ठारह व्याधि, ठारह काखी, ठारह भाखी, ठारह ठिंगै री गला, ठारह शौऊ, ठारह कोठी रा नेगी, ठारह देशा न घुमणू आला, ठारह जाति आदि आदि। वास्तव में पूरे ज़िला भर के देवताओं का समष्टि नाम ही ठारह करडू है। ऐसी मान्यता है कि ठारह करडू के सहारे

इस अंचल का भाग्य संचालित होता है।

लोक साहित्य तथा संस्कृति के प्रसिद्ध विद्वान मौलू राम ठाकुर का मानना है कि ठारह देवताओं की सूची जो प्रकाश में आई है, वह अठारह देवताओं का एक अलग समूह है, जो टुण्डी राक्षस के आतंक का मुकाबला करने के लिए गठित किया गया होगा। लोक विश्वास के अनुसार टुण्डी राक्षस का साम्राज्य पांगी से लेकर आसाम तक फैला था और हर क्षेत्र में उसके अत्याचार की भिन्न-भिन्न घटनाएं प्रचलित हैं। उनका यह भी मानना है कि कुल्लू दशहरे में मुहल्ले के दिन जब सभी देवता हाज़री देने के लिए रघुनाथ के पास जाते हैं तो प्रत्येक देवी-देवता राजा की चानणी में रखी नारसिंह की गद्दी को भी झुककर प्रणाम करते हैं। इस परम्परा से लगता है कि नारसिंह ठारह करडू देवताओं का अगुआ है और इसी की अध्यक्षता में दशहरा पर्व मनाया जाता है। दशहरे में राजा की जलेब में नारसिंह की घोड़ी का चलना और सौह में सभी देवताओं से मिलना भी इस बात की पुष्टि करता है।

2010 में कुल्लू में अश्वमेध यज्ञ का आयोजन हुआ। इसमें पूरे कुल्लू जनपद में नारसिंह की घोड़ी ने भगवान रामचन्द्र के करडू के साथ गांव-गांव जाकर सभी देवताओं को निमंत्रण देते हुए चार मास तक यात्रा की और वापिस आने पर ठारह करडू की सौह में यज्ञ संपूर्ण हुआ। इस यज्ञ में जनपद के सभी देवताओं के निशान ढालपुर लाए गए थे। इससे भी इस बात को बल मिलता है कि ठारह करडू की परम्परा में नारसिंह की विशेष भूमिका है।

कुल्लू के नग्गर गांव में 5 इंच मोटा, 6 फुट चौड़ा तथा 8 फुट लम्बा एक बड़ा पत्थर है। उसको ठारह करडू देवताओं ने मनाली के सामने बाहंग के ऊपर भृगुतुंग पहाड़ी के एक छोटे से भाग द्राम ढौग से मधुमक्खियों का रूप धारण करके यहां लाकर स्थापित किया है। इसे समस्त देवी-देवताओं का सिंहासन माना जाता है। स्व. लाल चंद प्रार्थी ने अपनी पुस्तक 'कुलूत देश की कहानी' में लिखा है कि जब कभी देश पर बड़ी आपत्ति आने की संभावना होती है तो यहां कुल्लू भर के देवता इकट्ठे होते हैं और जगत के कल्याण के लिए विचार-विमर्श करते हैं, जिसे *जगती पूछ* कहते हैं।

आश्विन मास के शुक्ल पक्ष की दशमी तिथि को उझी, लग, महाराजा, गड़सा, मनीकरण, बंजार, सैंज, आउटर सराज के विभिन्न गांवों से सोने-चांदी के मोहरों, छत्रों व रंग-बिरंगे परिधानों से सुसज्जित देवी-देवताओं की पालकियों को कन्धों पर उठा कर लाते जनसमूह का *ठारह करडू री सौह*

अर्थात् ढालपुर मैदान की तरफ आगमन अलौकिक दृश्य प्रस्तुत करता है। ढोल, नगाड़ों, शहनाई, करनाल, ढौंस, भाणे, रणसिंगे आदि की ध्वनि से पूरा ढालपुर मैदान गुंजायमान होता है। ऐसा लगता है मानो समूचा देवलोक धरती पर उतर आया हो। ढालपुर मैदान में दशहरे के अवसर पर असंख्य देवी-देवता सम्मिलित होते हैं इसलिए इसे ठारह करडू की सौह के नाम से जाना जाता है। इसी तरह आंगू डोभी में जिस स्थान पर जो देवता ठहरते हैं उस स्थान को भी ठारह करडू का स्थान माना जाता है। दशहरे के शुभारम्भ पर सभी देवता सबसे पहले रघुनाथपुर जाकर भगवान रघुनाथ की वन्दना करने के बाद ठारह करडू की परौल में माथा टेकना नहीं भूलते। इससे लगता है कि कुल्लू के समस्त देवी-देवता ही ठारह करडू की श्रेणी में आते हैं।

किसी समय कुल्लू दशहरे में 365 देवी-देवता शिरकत करते थे। दो सौ से अधिक देवता अभी भी दशहरे में सम्मिलित होते हैं। ये सब सात दिन तक ढालपुर के मैदान में टेंटों में रहते हैं। ठारह करडू इस क्षेत्र के लोगों की आधि-व्याधि से रक्षा करते आये हैं। इसका वर्णन लोकगीत की इस पंक्ति में भली-भांति होता है–

ठारह करडू पौहरी देशा रै शोभला देश सा म्हारा।
चांदी रा चाधरू ओढ़िया जोतडू हिऊएं रा देश सा म्हारा।

इसी तरह दशहरे के मौके पर एक लामण में ठारह करडू का वर्णन इस प्रकार हुआ है–

विदा लागी हेरा दसमी ठारह करडू री सौहा।
आसा जाणा ती घौरा बै लोभी बोला सा रौहा।

देवी भागासिद्ध की भारथा में वर्णन आता है कि वह ठारह करडू देवताओं की बहन है। वह कन्या रूप में थी। बहुत वर्षों पहले 18 करडू देवता नीहर अर्थात् मैदानों से आकर काज़ली बिज़ली के वन में सिकन्दरै री धार पर इकट्ठा हुए। वहां उन्हें एक छोटी सी कन्या मिली, जहां ये सब 12 वर्ष तक रहे। 12 वर्ष के बाद ठारह करडू बंटवारा करने लगे परन्तु आपस में बंटवारा नहीं हो सका। काफी विचार-विमर्श करने के बाद कन्या को बंटवारा करने का काम सौंपा गया। कन्या ने सभी देवताओं को बराबर हिस्सा बांटा परन्तु अपना हिस्सा रखना भूल गई। उसके पास अपने लिए एक तिल के बराबर भाग ही बचा रहा। तब ठारह करडुओं ने मशविरा करके निर्णय लिया कि क्यों न सभी अपने-अपने हिस्से में से थोड़ा-थोड़ा भाग कन्या को दें। सहमति से सबने

अपने हिस्से में से कुछ भाग कन्या को दे दिया। जिससे तिल बराबर भाग कन्या के पास ज़्यादा हो गया। तब कन्या ने कहा कि ये जो तिल बराबर भाग मुझे ज़्यादा आया है, इसे भी सब में बराबर बांट लेते हैं। परन्तु देवताओं ने वह भाग कन्या को बंटवारा करने की एवज़ में दे दिया।

सोलहवीं शताब्दी में राजा बहादुर सिंह ने सभी देवी-देवताओं को पूजापाठ व पर्व त्योहार का व्यय चलाने के लिए मुआफियां दी थीं जो मुजारा अधिनियम लागू होने तक रहीं। इस अधिनियम के लागू होने के बाद ज़मीन मुजारों के नाम हो गई। अब गिने-चुने देवता ही ऐसे हैं जिनके पास कुछ भूमि -बची है। अधिकांश देवी-देवताओं की मुख्य आय हार के फेरे, चगोड़ी, ढाल, भेंट, रहेल और श्रद्धालुओं द्वारा दी गई भेंट इत्यादि से होती है।

मनु मंदिर

वर्तमान बाज़ार से लगभग दो किलोमीटर की दूरी पर मनाली गांव में मनु महाराज का पहाड़ी शैली का मंदिर था, जिसके स्थान पर सन् 1992 में शिखर पैगोडा शैली में नये मंदिर का निर्माण किया गया है परन्तु घमीरी अर्थात् गर्भगृह पुराना ही है। वर्तमान मंदिर उसके बाहर बनाया गया है। मंदिर के गर्भगृह के बाहर प्रदक्षिणा के लिए बरामदा बना है। गर्भगृह की चारों दीवारों में दुर्गा, विष्णु, गणेश, शिव, काली, सरस्वती, हनुमान आदि की कांस्य मूर्तियां रखी गई हैं। गर्भगृह के अन्दर मनु महाराज की मूल मूर्ति लगभग डेढ़ फुट ऊंची तथा एक फुट चौड़ी है। मंदिर के बाहर दायीं तरफ बैल, घोड़े, हाथी आदि की आकृतिनुमा पत्थर की शिलायें रखी गई हैं। सामने पूर्व की ओर देवदार के दो तीन पुराने शहतीर रखे हैं। पुजारी रामनाथ के अनुसार कभी कोठी से अरछण्डी तक के गांव वालों में से टुण्डी राक्षस प्रतिदिन एक को शहतीर वाले स्थान पर खाकर उसकी हड्डियों को जलाता था। जब मनु, शांडिल और गौतम आदि ऋषियों ने उसके साथ टिम्बर शाचिका का विवाह करवाया तो उसकी याद में इस स्थान पर ये शहतीर रखे जाने लगे। जब ये पूरी तरह सड़ जाते हैं, तो इन्हें जला कर यहां पर दूसरे शहतीर रखे जाते हैं।

मनु की मूल मूर्ति जिस स्थान पर खुदाई करते समय मिली थी, वह स्थान वर्तमान मंदिर की दायीं तरफ लगभग 20 मीटर की दूरी पर रास्ते के ऊपर की तरफ है। मूर्ति निकलते ही यहां पर जलस्रोत प्रस्फुटित हुआ था, जो आज भी बह रहा है। मनु ऋषि इस जलस्रोत के अतिरिक्त किसी अन्य तीर्थ में स्नान के लिए नहीं जाता है। मंदिर में प्रातः-सायं पूजा तथा प्रसाद इत्यादि

बनाने के लिए भी यही जल प्रयुक्त होता है।

जिस स्थान पर मंदिर बना है, वह स्थान देवी हिडिम्बा ने इसे दिया है। मनु महाराज के पास अपनी कोई भूमि नहीं थी जबकि देवी हिडिम्बा के पास सैंकड़ों बीघा भूमि थी। देवी ने मनु ऋषि को मंदिर बनाने के लिए स्थान दिया था इसलिए ये आपस में भाई-बहन माने जाते हैं। इनका कोई उत्सव हो तो ये दोनों उसे मिलकर निपटाते हैं। इनका रथ भी एक ही है, जिसमें ऊपर के तीन मोहरे तथा नीचे के मोहरे देवी हिडिम्बा के हैं और बीच में तीन मोहरे मनु ऋषि के हैं। यह मनाली की पवित्र भूमि का ही सत है कि यहां पर राक्षस वृत्ति की हिडिम्बा ने देवी रूप प्राप्त किया और सृष्टि को पुनर्जीवित करने वाले मनु आज एक ही रथ में संयुक्त रूप से पूजे जाते हैं। यह भी माना जाता है कि मनु महाराज यहां नेपाल से आये थे, अतः इन्हें 'नरपाला' ऋषि भी कहते हैं।

मनु-मंदिर गांव की ऊपरली बेहड़ तथा भण्डार निचली बेहड़ में स्थापित है। देवी हिडिम्बा का भंडार भी ऊपरली बेहड़ में स्थित है। मनाली गांव में खारका बेहड़, धोणी चाणी बेहड़, सराजी बेहड़, बुन्हली बेहड़, बेहड़टा आदि मुहल्ले हैं। मनालसू नाले के पास, जहां से मनु मंदिर के लिए चढ़ाई आरम्भ होती है, पहले गांव वालों के घराट हुआ करते थे। इस स्थान को अभी भी *घौरठ आगे* के नाम से जाना जाता है।

मनाली में मनु के देवरूप में प्रकट होने के बारे में कहावत है कि इस गांव में धोणा चाणी नाम के वंश के परिवार में गौरी नाम की एक कन्या थी। एक बार एक साधु उस कन्या से भिक्षा में दूध मांगने लगा। कन्या ने कहा, 'महाराज! हमारे पास तो गाय नहीं है, अपितु एक छोटी बछिया है, अतः दूध कहां से दूं।'

साधु ने कहा, 'बछिया को ही दूह लो।'

साधु के कहने पर जब कन्या ने बछिया को दूहा तो उसके थनों से दूध निकलने लगा। साधु के कहने पर तत्काल ही दूध की दही बन गई। यह चमत्कार देखकर कन्या ने साधु से पूछा, 'महाराज! आप कौन हैं?'

साधु बोला, 'मैं वैवस्वत मनु हूं। यहां मेरा पुराना निवास है। अब मैं पुनः यहां पर बसना चाहता हूं।'

'इसका क्या प्रमाण है कि आप यहां पर कभी रहे हैं।' कन्या ने उत्सुकता से प्रश्न किया।

'तुम यहीं पर आंगन में खुदाई करो, मेरी मूर्ति निकलेगी।' यह कह कर साधु अन्तर्धान हो गया।

जब गौरी के माता-पिता घर आये, तो उस ने साधु वाला वृत्तांत उन्हें सुनाया। परिवार वालों ने साधु द्वारा बताये स्थान पर खुदाई करवाई। वहां सचमुच मूर्ति निकल आई।

मनु ऋषि के अतिरिक्त यहां पर दानी देऊ, छेवु देऊ, पाताल देऊ और झुमटा आदि देवता पूजित हैं। ये सब मनु ऋषि के सहायक हैं।

जनश्रुति है कि मनाली में पहले ऋषि वशिष्ठ तपस्या किया करते थे, जिसका प्रमाण *बौशटै री सौह* यहां पर अभी भी विद्यमान है। वशिष्ठ ऋषि को यह स्थान अत्यन्त प्रिय था। उसने यहां पर एक कुटिया बनाई थी। गांव वाले उसकी कुटिया के बाहर रखे पात्र में उसके लिए भोजन रख देते थे। एक दिन एक अनभिज्ञ गांव वाले ने उसके पात्र में सब्ज़ी-रोटी की जगह बकरे का मांस रख दिया। ऋषि शाकाहारी थे। वे पात्र में मांस देखकर नाराज़ हो गए और यह स्थान छोड़ कर बौशट गांव चले गए। उन्होंने गांव वालों को शाप दे दिया कि गांव में रेत और पत्थर भर जायें। कुछ समय बाद मनालसू नाले में बाढ़ आने से मनाली के खेत जो गांव के ठीक नीचे की तरफ थे, रेत, पत्थर से भर गए और लहलहाती फसल नष्ट हो गई। पुराना मनाली गांव मनालसू खड्ड के दायीं तरफ लौग हट क्षेत्र में वीर देवता का स्थान है। बच्चों का मुंडन वीर देवता के पास जाकर ही किया जाता है।

हिडिम्बा मंदिर ढूंगरी

पुरानी मनाली की बायीं तरफ, एक किलोमीटर की दूरी पर देवदार के घने पेड़ों के बीच ढूंगरी नामक स्थान पर बना देवी हिडिम्बा का मंदिर पर्यटकों तथा श्रद्धालुओं के आकर्षण का केन्द्र है। महाभारत के एक संदर्भ के अनुसार हिडिम्बा पांडव पुत्र भीम की पत्नी थी, जिसने विवाह के बाद अपना राक्षसी रूप त्याग कर देवी का रूप प्राप्त कर लिया था।

महाभारत के सभा पर्व में हिडिम्बा से सम्बन्धित आख्यान आता है कि पाण्डव लाक्षागृह में लगी भीषण आग से सुरंग मार्ग द्वारा बचकर सुरक्षित निकले और एक अन्य वन्य क्षेत्र में जा पहुंचे। थकान के कारण माता कुन्ती और चार भाइयों को एक सुन्दर स्थान पर नींद आ गई। भीमसेन जागता हुआ इस निर्जन वन में पहरा देता रहा। इस स्थान के समीप ही हिडिम्ब राक्षस अपनी बहन हिडिम्बा के साथ रहता था। हिडिम्ब को मानव-गन्ध अनुभूत हुई

तो उस मानव भक्षी राक्षस ने जंगल में मनुष्यों का पता लगाने के लिए अपनी बहन हिडिम्बा को भेजा। वह आदेश मानकर उस स्थान तक जा पहुंची, जहां पांडव रुके थे। मनोहर, रूपवान भीमसेन को देखते ही वह राक्षसी मुग्ध होकर मन ही मन उन्हें चाहने लगी–

एवमुक्ता हिडिम्बा तु हिडिम्बेन तदा वने।
भ्रातुर्वचनमाज्ञाय त्वरमाणेव राक्षसी।।
जगाम तत्र यत्र स्म पाण्डवा भरतर्षभ।
ददर्श तत्र सा गत्वा पाण्डवान् पृथया सह।।
शयनान भीमसेनं च जाग्रतं त्वपराजितम्।
दृष्ट्वैव भीमसेनं सा शलपोतमिवोद्गतम्।
राक्षसी कामयामास रूपेणाप्रतिमं भुवि।।

हिडिम्बा भीम से प्रणय वार्ता करने लगी। उसने भीम को अपने मन्तव्य के बारे में बताया और कहा कि वह अपनी मायावी शक्ति से पाण्डवों की रक्षा करेगी परन्तु भीम ने हिडिम्बा की यह बात अस्वीकार कर दी। जब काफी समय तक हिडिम्बा वापिस नहीं लौटी तो हिडिम्ब उसे ढूंढने गया। भीम और हिडिम्बा को वार्तालाप करते देखकर वह आग बबूला हो गया। भीम सेन ने उसे युद्ध के लिए ललकारा। दोनों में घमासान युद्ध हुआ जिसमें हिडिम्ब मारा गया। उसके बाद हिडिम्बा से भीम ने इस शर्त पर विवाह किया कि जब तक उसके पुत्र नहीं होगा, वह तब तक ही उसके साथ रहेगा। भीम और हिडिम्बा ने विकराल देहधारी पुत्र घटोत्कच को जन्म दिया।

हिडिम्बा विभिन्न मायावी कलाओं में निपुण थी और आकाशमार्ग से मन के वेग के समान चलने वाली थी। अतः अनेक ऐसे स्थानों में भी भीमसेन को उड़ाकर ले गई जो मानव मात्र के लिए दुर्लभ स्थल थे और ऐसे स्थानों में हिडिम्बा अपने पति भीम को आनंद प्रदान करती हुई विचरण करती रहती थी।

भीम और हिडिम्बा के विवाह को वहां रहने वाला एक और राक्षस सागू पचा नहीं पाया। सागू ने भी भीम को युद्ध के लिए ललकारा। वह दहाड़ता हुआ भीम पर बरस पड़ा। दोनों में घमासान युद्ध हुआ। राहणी नाले से गिर कर मरे हुए याक का तेज़ सींग भीम ने सागू के गले में घोंप दिया। सागू ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने, गरजने और दहाड़ने लगा। भीम ने उसे उठाया और अन्धेरे गड्ढे में फेंक दिया, परन्तु उसका गरजना कम नहीं हुआ। उस ने कहा कि जब तक उसके गले से कष्टदायक सींग निकाला नहीं जाएगा, वह

गरजता और शोर मचाता रहेगा। भीम ने इस शर्त पर सींग निकाला कि वह प्रतिदिन केवल ढाई घड़ी के लिए गढ़े से बाहर आकर शोर मचाएगा। आज भी राहणी नाले से कभी-कभी दहाड़ और शोर सुनाई देता है। इसी कारण इस जलप्रपात को *भीम फाल* भी कहते हैं।

देवी का चार छतीय मंदिर पैगोड़ा शैली में बना है। नीचे की तीन छतों पर लकड़ी के तख्ते लगाए गये हैं तथा ऊपरी शंकु आकार की चौथी छत में तख्तों पर तांबे की चादर का आवरण चढ़ाया गया है। मंदिर की ऊपरी तीनों मंज़िलें काष्ठ निर्मित हैं। प्रथम मंज़िल का अगला भाग लकड़ी का है तथा तीन ओर की दीवारें पत्थर और लकड़ी की बनी हैं। प्रथम मंज़िल के ऊपरी अग्रभाग में एक छज्जा सा बना है जिसे *राणी का पौउड़ा* कहते हैं। धारणा है कि जब राज परिवार मंदिर में आता था, तो रानियां इस छज्जे में बैठकर दृश्यावलोकन करती थीं। मंदिर के आगे का प्रांगण पत्थर के चक्कों से सजाया गया है। दायीं ओर ठहरने एवं रसोई बनाने के लिए पहाड़ी शैली में मकान बने हैं। चारों ओर देवदार के हरे-भरे ऊंचे पेड़ और आसपास की पर्वत शृंखलाएं प्रकृति-प्रेमियों का मन मोह लेती हैं। मंदिर के भीतर 60 सेंटीमीटर ऊंची पत्थर की मूर्ति है तथा 20 सेंटीमीटर के लगभग देवी के चरण हैं। मंदिर के भीतर एक शिला के नीचे देवी का स्थान है। चट्टान अर्थात् ढूंग के कारण भी इस स्थान का नाम ढूंगरी पड़ा होगा। देवी की मान्यता यहां पुरातन समय से ही है। मंदिर बनने से पूर्व यहां पर लोग शिलापट्ट की ही पूजा करते रहे होंगे। देवी का रथ भी उससे पहले बना होगा क्योंकि इसके एक मोहरे पर राजा उद्धरणपाल के समय सन् 1418 में बने होने का उल्लेख है, जब कि मंदिर के द्वार पर टांकरी लेख के अनुसार मंदिर का निर्माण राजा बहादुर सिंह ने सन् 1553 में करवाया था। मंदिर के बाहर लकड़ी पर नक्काशी का उम्दा काम हुआ है। उकेरी गई आकृतियों में दुर्गा, राम-लक्ष्मण, ऋषि, गन्धर्व, विष्णु, ब्रह्मा, नवग्रह, अप्सराएं, कृष्ण, बलराम, वराह, रामचन्द्र अभिषेक, ऋषि वशिष्ठ तथा द्वारपाल प्रमुख हैं। मंदिर के दायें दरवाज़े के फलक पर महिषासुर मर्दिनी, हाथ जोड़े भक्त, पैर फैलाये नन्दी पर शिव-पार्वती की प्रतिकृतियां अंकित हैं। बायें दरवाज़े के फलक पर दुर्गा, हाथ जोड़े भक्त, पैर फैलाए गरुड़ पर विष्णु और लक्ष्मी की आकृतियां उकेरी गई हैं। दरवाज़े के ऊपर के तख्ते के मध्य भाग में शिव पुत्र गणेश की प्रतिमा है। ऊपर नवग्रह तथा उसके ऊपर नाचते हुए गन्धर्वों का दृश्य उकेरा गया है। कुछ चित्रकारियां श्रीकृष्ण लीला भाव को भी

दर्शाती हैं। सामने की दीवारों में टंगरोल, बारह सिंगा, मेढ़े आदि के सींग लगे हैं जो मनाली के पार्श्व में एक समय जंगली जानवरों के होने का संकेत देते हैं।

यह मंदिर भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग की देख-रेख में सुरक्षित स्मारक घोषित हुआ है। वर्तमान मनाली के पास ढूंगरी नामक स्थान को ही वारणावत माना जाता है।

कुल्लू राजपरिवार वाले हिडिम्बा को दादी मानते हैं। जनश्रुति है कि एक समय कुल्लू में क्रूर अत्याचारी राणाओं का आधिपत्य था। वे प्रजा को बहुत तंग किया करते थे। यहां तक कि वे नवजात शिशुओं की माताओं के दूध से खीर बनाकर खाया करते। जिस कारण बिना दूध से बच्चे तड़प-तड़प कर मर जाते। इस अत्याचार से दुखी होकर लोग हिडिम्बा देवी की शरण में गये और देवी ने उन्हें अत्याचारी राणाओं से मुक्ति दिलाने का आश्वासन दिया।

उन्हीं दिनों युवक विहंगमणिपाल मायापुरी से कुल्लू आया। इतिहासकार इसे दूसरी शताब्दी की घटना मानते हैं। ऊंची-ऊंची पर्वत चोटियों, कल-कल बहते नदी-नालों तथा देवदार के हरे-भरे पेड़ों से घिरा यह राज्य उसे अत्यन्त सुन्दर लगा। उसने यहीं पर बसने का इरादा किया।

जीवनयापन के लिए वह एक कुम्हार के घर पर नौकर हो गया। कुम्हार और कुम्हारिन के कोई सन्तान नहीं थी, इसलिए उन्होंने उसको अपना बेटा बना लिया। उसे भी मिट्टी के घड़े बनाने सिखाए। कुम्हार और कुम्हारिन घर में घड़े बनाते और वह उन्हें पीठ पर ढोकर गांव-गांव बेचने जाता।

एक दिन वह किलटे में घड़े उठाकर एक गांव जा रहा था। रास्ते में उसे एक कमज़ोर बुढ़िया मिली। बुढ़िया ने उसे देखकर कहा, "बेटा! मैं बहुत बीमार हूं। चलने में असमर्थ हूं। अंग-अंग टूट रहा है। इसलिए मुझे अगले गांव तक ले चलो। मैं तुम्हारी कृतज्ञ रहूंगी।"

युवक को बुढ़िया की हालत पर दया आ गई। उसने बुढ़िया को किलटे में डाल दिया और उसे उठाकर चल दिया। चलते-चलते वह एक ऊंची धार पर पहुंच गया। वहां पहुंचकर बुढ़िया ने युवक से कहा, "बेटा! तुम थक गये होंगे। किलटा उतारकर ज़मीन पर रख लो, थोड़ी देर आराम करते हैं।"

विहंगमणिपाल ने किलटा ज़मीन पर रखा और बुढ़िया को किलटे से उतार दिया। थोड़ी देर आराम करने के बाद राजकुमार ने बुढ़िया से कहा, "दादी! अब चलते हैं, मुझे सामने के गांव में पहुंचना है। वहां आज मेला लगा हुआ है। मेले में घड़े बेचकर वापस अपने गांव भी लौटना है।"

"तूने मुझे दादी कहा, मुझे बड़ा अच्छा लगा। आज से तुम मेरे पोते हुए और मैं तुम्हारी दादी। अब तुम्हें अपनी दादी की एक बात माननी होगी।" बुढ़िया खुश होते हुए बोली।

"कौन सी बात दादी।" राजकुमार ने पूछा।

"यह कि चलने से पहले तुम मेरे कन्धों पर बैठोगे।"

"यह कैसे हो सकता है। एक तो तुम इतनी बूढ़ी, उस पर इतनी कमज़ोर और बीमार। नहीं... नहीं... मैं तुम्हारे कन्धों पर नहीं बैठ सकता।" युवक ने प्रतिवाद किया।

"तुम्हें बैठना ही होगा। तुमने मुझ कमज़ोर और बीमार बूढ़ी पर एहसान किया है। अगर मैंने तुम्हारा एहसान नहीं चुकाया तो मुझे बड़ा कष्ट होगा, इसलिए मैं तुम्हारे उपकार से उऋण होना चाहती हूं।" बुढ़िया ने आदेशात्मक स्वर में कहा।

दादी का आदेश मान कर वह डरते हुए बुढ़िया के कन्धे पर बैठ गया। ज्यों ही वह उसके कन्धे पर बैठा, वह लम्बी होने लगी। कुछ समय में ही वह इतनी लम्बी हो गई कि पहाड़ की चोटियां भी उससे नीचे रह गईं। ऐसा माना जाता है कि उसके स्तनों तथा पांवों के निशान अभी भी इस स्थान पर मौजूद हैं।

बहुत ऊंचा होने पर उसने विहंगमणिपाल से कहा, "बेटा! तुम चारों तरफ अपनी नज़र दौड़ाओ और मुझे बताओ कि तुम्हें कहां तक का क्षेत्र दिखाई दे रहा है।"

उसने चारों दिशाओं में दृष्टि दौड़ाकर कहा, "दादी! मुझे कोठी से लेकर दाड़ी-दलासणी तक का क्षेत्र नज़र आ रहा है।"

"बेटा! जितना क्षेत्र तुम्हें दिखाई दे रहा है। तू इतने क्षेत्र का राजा बनेगा। मैं यहां पर निभाया अपना वचन कभी भी क्षीण नहीं होने दूंगी। यह मेरा तुम्हें वरदान है।" यह कह कर बुढ़िया छोटी हो गई और युवक को कन्धे से उतारकर अन्तर्धान हो गई। आज भी हर तीसरे वर्ष देवी उस ऊंची धार जैधार में जाकर मेला मनाती है।

बुढ़िया के अन्तर्धान होने पर युवक घड़ों का किलटा उठाकर उस गांव की ओर चल पड़ा जहां मेला लगा हुआ था। वहां देवी हिडिम्बा ने गांववालों को बताया हुआ था कि जो भी युवक बाहर से मेले में आएगा और मधुमक्खियों का झुंड जिसका पीछा कर रहा होगा, वे उसे अपना राजा मानें, वही क्रूर राणाओं से उन्हें मुक्ति दिलाएगा। विहंगमणिपाल जिस समय मेले में पहुंचा,

उस समय मेला पूरे यौवन पर था। लोग ढोल-नगारों की ताल पर नाच रहे थे। उसके वहां पहुंचने पर गांव के लोगों ने देखा कि युवक के पीछे मधुमक्खियों का झुंड चल रहा है, वे समझ गए कि यह वही युवक है जिसके सम्बन्ध में देवी ने बताया था।

यह देखकर लोगों ने उसे जै देवा कहा और उसके गले में फूलों की माला और माथे पर तिलक लगाकर उसे अपना राजा घोषित किया। राजा बनने के बाद विहंगमणिपाल ने प्रजा के साथ मिलकर दुष्ट एवं अत्याचारी राणाओं का अंत किया।

घटोत्कच

भीम और हिडिम्बा पुत्र घटोत्कच का स्थान हिडिम्बा देवी के मंदिर की दायीं तरफ एक वृक्ष में है। घड़े जैसे चिकने सिर वाला होने के कारण ही इसका नाम घटोत्कच पड़ा है। यह बाहुबली तो था ही, इसके साथ-साथ मायावी शक्तियों का स्वामी भी था। कहते हैं एक बार इसने अभिमन्यु की पत्नी उत्तरा को द्वारिका से पलंग समेत यहां पर पहुंचाया था। इसका पुत्र बर्बरीक भी वीर योद्धा हुआ है। महाभारत में पांडवों की जीत का मूल श्रेय मनाली को जाता है। यदि भीम द्वारा हिडिम्ब न मारा गया होता तो न भीम का विवाह हिडिम्बा से होता, न ही उनका पुत्र घटोत्कच होता और न कर्ण अपने अस्त्र को घटोत्कच पर चलाता। न अर्जुन सुरक्षित रहता और न पांडवों की विजय होती।

लोकश्रुति है कि घटोत्कच जब जवान हुआ और हिडिम्बा बूढ़ी हो गई, तो वह प्रतिदिन एक आदमी आसपास के गावों से अपने तथा अपनी माता के भोजन के लिए लाया करता था। एक दिन वह भोजन के लिए आदमी लाने के लिए एक घर में जा घुसा। उस परिवार में एक बुढ़िया तथा उसके तीन नौजवान बेटे थे। वे चारों घटोत्कच के साथ जाने का हठ करने लगे। अन्त में तय हुआ कि मंझोना (मझला भाई) उसके साथ जाएगा। घटोत्कच मंझोने को लेकर चल दिया। रास्ते में एक स्थान पर मंझोना लघुशंका के बहाने वहां से भाग गया। घटोत्कच मझोनेया.. मझोनेया.. कह कर ज़ोर-ज़ोर से आवाज़ देने लगा। यह आवाज़ उधर से गुज़र रहे भीमसेन ने सुनी। भीमसेन भी अपने भाइयों में मझला था। घटोत्कच, ने उसे देखते ही कहा- 'अरे! तू कहां चला गया था, मेरी माता को बहुत भूख लगी होगी। अब आ शीघ्र चल।' भीमसेन समझ गया कि वह उसे अपनी माता के भक्षण के लिए ले जा रहा है। भीम

ने कहा, 'मैं ऐसे तो चलता नहीं, यदि तेरी माता को अधिक भूख लगी है तो तू मुझे उठाकर ले चल।' घटोत्कच भीम को उठाने लगा। उसे उठाना तो दूर, वह उसका पांव तक भी हिला न सका। लाचार होकर वह रोते हुए भीम से प्रार्थना करने लगा कि वह उसकी माता के पास चले, नहीं तो वह जीवित नहीं बचेगी। भीमसेन उसके साथ चल पड़ा। जब वे हिडिम्बा के पास पहुंचे तो वह फूली नहीं समाई। हिडिम्बा ने घटोत्कच को भीम का परिचय दिया। तीनों का मधुर मिलन हुआ। तब भीम ने उनको आगे से मानव मांस भक्षण न करने की सलाह दी और भविष्य में मनुष्यों का हित करने का वचन लिया। कहते हैं तब से हिडिम्बा देवी रूप में अवस्थित हुई और घटोत्कच देवी के साथ ही एक किनारे उसके सेवक के रूप में रहने लगा।

वषिष्ठ ऋषि

ब्रह्मा के मानसपुत्र महर्षि वसिष्ठ की कुल परम्परा वेदव्यास की स्तुति में कहे जाने वाले इस स्तोत्र से स्पष्ट होती है—

व्यासं वासिष्ठनप्तारं शक्तेः पौत्रकल्मषम्।
पराशरात्मजं वन्दे शुकतातं तपोनिधिम्।।

अर्थात् मैं निर्मल तपोनिधि वसिष्ट ऋषि के प्रपौत्र, शक्ति ऋषि के पौत्र, पराशर ऋषि के पुत्र तथा शुकदेव के पिता व्यास ऋषि की वन्दना करता हूं। मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्री राम के कुलगुरु महर्षि वसिष्ठ ब्रह्मा जी के मानस पुत्र हैं। ये ऋग्वेद के सप्तम मण्डल के मन्त्रद्रष्टा ऋषि हैं। इंद्रियां इनके वश में थीं। इसलिए काम, क्रोध आदि विकार इनसे पराभूत थे। महाभारत के आदि पर्व में लिखा है कि इंद्रियां इनके वश में होने के कारण ही इन्हें वशिष्ठ कहा गया है—

इन्द्रियाणां वशकरो वसिष्ठ इति चोच्यते।

वशिष्ठ गांव का पुराना नाम बौष्ट है। बौष्ट शब्द वसिष्ठ से ही व्युत्पन्न हुआ है। मनाली से 3 कि.मी. की दूरी पर स्थित वशिष्ठ गर्म जल के चश्मों के लिए प्रसिद्ध है। यहां पर महर्षि वशिष्ठ के पहाड़ी शैली के मंदिर में धोती, टोपी, कन्धे पर सफेद चादर से सुस्सजित ऋषि की आदमकद प्रस्तर मूर्ति आशीर्वाद देती लगती है। ऋषि वशिष्ठ के मंदिर की बायीं तरफ गर्म जल के कुण्डों के अलावा पर्यटन निगम द्वारा टर्किश बाथ भी बनाये गए हैं। वशिष्ठ में गर्म जल के चश्मों के प्रस्फुटित होने के सम्बन्ध में कहा जाता है कि यहां श्री राम ने लक्ष्मण को ऋषि वशिष्ठ को लाने भेजा था। उस समय यह मंदिर लक्ष्मण के

ठहरने हेतु बना था। एक दिन उस ने देखा कि उनके गुरु वशिष्ठ को स्नान करने के लिए काफी दूर जाना पड़ता है। तब उसने प्रांगण में खड़े होकर भूमि पर बाण मारा और बाण के भूमि पर लगते ही गर्म जल की धारा प्रस्फुटित हुई। यहां के गर्म जल का ताप 111 से 123 डिग्री फारनहाइट तक है।

महाभारत में वर्णन मिलता है कि एक बार विश्वामित्र ने वशिष्ठ आश्रम में नंदिनी गाय को देखा। उसे वह गाय पसन्द आ गई। उसने वह गाय ऋषि से मांगी परन्तु वशिष्ठ ने उसे देने से इनकार कर दिया। विश्वामित्र ने उस गाय के बदले ऋषि को अपना राज्य देने की बात कही परन्तु वशिष्ठ ने तो अपनी इन्द्रियों को वश में कर रखा था। उन्हें विश्वामित्र का प्रलोभन डिगा नहीं सका। तब विश्वामित्र ने अपनी सेना के बल पर वशिष्ठ के आश्रम को तहस-नहस कर दिया और नंदिनी गाय को बलपूर्वक ले जाने लगा, परन्तु गाय को अपने स्वामी व स्थान से अत्यन्त प्रेम था। वह उनके चंगुल से भाग गई। इस घटना से विश्वामित्र को अपने क्षत्रिय होने पर ग्लानि हुई और वह राजपाट त्याग कर ब्रह्मर्षि बनने के लिए सरस्वती नदी के किनारे तपस्या करने लगा। उसने घोर तपस्या की जिससे प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने उससे वर मांगने को कहा। विश्वामित्र ने कहा, 'मैं ब्राह्मण हो जाऊं।' इस प्रकार उसने ब्रह्मा के आशीर्वाद से ब्राह्मणत्व प्राप्त किया परन्तु उसके मन से द्वेष की भावना नहीं गई। वह वशिष्ठ का शत्रु बन गया और उनका अहित करने की सोचने लगा। राजा कल्माषपाद जो शक्ति मुनि के शाप के कारण राक्षस बन गया था, विश्वामित्र ने किंकर नाम के राक्षस को उसके शरीर में प्रवेश करा दिया, जिसने वशिष्ठ के सभी पुत्रों को मार डाला। पुत्रों के मरने पर वशिष्ठ बहुत दुखी हुए। तब उन्होंने हताश-निराश हो कर आत्महत्या करने के उद्देश्य से अपने हाथ-पांव रस्सी से बांध लिए और अर्जीकिया नदी में छलांग लगा दी। परन्तु पवित्र नदी ने उनकी रस्सी के बन्धन तोड़ दिए और उन्हें कुछ ही दूरी पर नदी से बाहर निकाल दिया। जिस स्थान पर वशिष्ठ बाहर निकले थे वह वर्तमान वशिष्ठ ही है। वशिष्ठ मंदिर के साथ ही श्री राम मंदिर में राम, लक्ष्मण, सीता व हनुमान की मूर्तियां विराजमान हैं।

वशिष्ठ गांव के ही निकट छोईड़ नामक सुन्दर झरना है। इस झरने की यह विशेषता है कि लोग दूर-दूर से अपने बच्चों को मुंडन हेतु यहां लाते हैं। मान्यता है कि यहां मुंडन करने से बच्चों को प्रेतबाधा अथवा छाया से मुक्ति मिलती है।

दुर्गा मंदिर

वर्तमान मनाली बाज़ार में माँ दुर्गा का मंदिर है। इस स्थान को दाना बिहाल भी कहते हैं जिसके पीछे यह तर्क दिया जाता है कि सुनसान जगह होने के कारण यहां पर दानव रहते थे। यदि कोई पथिक इस मार्ग से अकेला गुज़रता तो दानव उसे डराते थे। दानव का क्षेत्र कुल्लू की तरफ से बम्बे कोठी जिसे *औखी रा गौलू* भी कहते हैं, से आरम्भ होता था। उस ज़माने में औखी रा गौलू से लोग जत्थों में निकलते थे। जैसे-जैसे आबादी बढ़ती गई, लोगों ने बाज़ार बसाना आरम्भ किया। शुरू में यहां चार-पांच परिवारों ने अपना व्यापार आरम्भ किया, जिनमें अवस्थी खानदान, लाला मेला राम, पंडित किरपा राम, लाला हीरा लाल सूद प्रमुख थे। बाज़ार के बीच में जहां पर मां का मंदिर है, पहले उस जगह पीपल के विशाल वृक्ष के चारों ओर पत्थरों से बना एक चबूतरा था। आते-जाते देवता वृक्ष की छाया में विश्राम किया करते थे। बाद में लोगों ने उस चबूतरे पर कब्ज़ा करके वहां दुकानें बना दीं। 1960 तक यह क्षेत्र का मुख्य बाज़ार बन गया। 23 अक्तूबर सन् 1964 को इस बाज़ार में आग लग गई और आधा बाज़ार जल गया। चबूतरे वाली जगह खाली हो गई। लोगों ने फिर लकड़ी के खोखे बनाये और उस जगह को पुनः घेर लिया। 13 नवम्बर सन् 1973 को बाज़ार में दोबारा आग लग गई और चबूतरे से ऊपर वाला पूरा बाज़ार जल गया। इस पर लोगों ने किसी दैवी शक्ति का स्थान मानकर चबूतरे वाली जगह पर भजन-कीर्तन करना आरम्भ कर दिया। एक दिन भजन-कीर्तन करते हुए एक व्यक्ति को खेल आई। उसने बताया कि वह दुर्गा है और यह उसका पुराना स्थान है। यहां उसकी मूर्ति भूमिगत है। खुदाई करने पर चबूतरे के नीचे गोल आकार का चार फुट लम्बा पत्थर निकला, जिसे देवी मान कर उस स्थान पर मंदिर बनाया गया। वर्तमान मूर्ति जयपुर से लाकर यहां पर स्थापित की गई है। अब पुराने मंदिर के स्थान पर नया मंदिर बनाया गया है, जिसमें लकड़ी पर नक्काशी का बेहतरीन काम हुआ है।

अठारह नाग

कुल्लू ज़िला में वासुकि को नागों का जन्मदाता माना जाता है। वासुकि नाग का स्थान एवं मन्दिर नग्गर गांव से ऊपर हलाण गांव में है। इस नाग को यहां वासुका तथा वासू भी कहा जाता है। इसका मूल स्थान हलाण गांव से ऊपर नगौणी में है, जहां सौर नाम से एक दलदली जगह है, जिसके आगे पानी का एक झरना है। वासुकि का असली स्थान इसी तालाब तथा झरने

के पास है। पराशर ऋषि की भारथा में उल्लेख आता है कि वासुकि नाग दांत के मसूड़ों से उत्पन्न हुए हैं।

काना ते हूरवीर बागर पन्ने
भासू ते वासकि नाग पन्ने।

मनाली के साथ ही दो किलोमीटर की दूरी पर गोशाल गांव की एक कन्या के साथ वासुकि ने विवाह रचाया था और उनके 18 नाग पुत्र उत्पन्न हुए। मां ने उन्हें उठाकर एक बड़े घड़े *भांदल* में रखा और वहीं उनको दूध देना प्रारम्भ किया। वह उन्हें दूध पिलाती और देवता समझ कर धड़छ में धूप जलाकर उनकी पूजा करती। एक दिन वह किसी काम से बाहर गई हुई थी तो नागों को दूध पिलाने का काम उस घर की बहू को करना पड़ा। बहू एक हाथ में धड़छ पकड़ कर तथा दूसरे हाथ में दूध का कटोरा लेकर भांदल के पास चली गई। ज्यों ही उसने भांदल का ढक्कन खोला, छोटे-छोटे नाग दूध पीने के लिए घड़े के मुंह से लपलपाने लगे। उन्हें देखकर वह डर गई और उसी डर से हाथ में पकड़े हुए धड़छ से जलता हुआ धूप घड़े में गिर गया और जलते अंगारे नागों के ऊपर गिर गए। भांदल के अन्दर ऐसी भगदड़ मची कि सभी नाग घड़ा फाड़कर जिधर भी रास्ता मिला भाग खड़े हुए। एक नाग की आंख जल गई और वह वहीं गोशाल में रहा। अन्य नाग दूसरे गांवों को चले गए। जो नाग वहीं रहा उसे कंचन या काणा नाग कहा जाने लगा। कंचन नाग ने कुछ समय तक रोहतांग में व्यास ऋषि के पास रह कर तप किया था। इसीलिए गांव में जो रथ बना है उसमें कंचन नाग के साथ व्यास ऋषि तथा गौतम ऋषि भी विराजमान हैं।

कंचन नाग का मन्दिर काठकुणी की चिनाई से पहाड़ी शैली में बना है। दीवारों और चौखटों पर नक्काशी की हुई है, जिसमें आदमी, घोड़े, देवते, सांप, पक्षी आदि अंकित हैं। मन्दिर में रई, तोस व देवदार की लकड़ी प्रयुक्त हुई है। शिखर पर ढाई फुट मोटा और बीस इंच चौड़ा *बदोर* लगा है। मन्दिर के सामने लगभग 60 फुट लम्बी ध्वजा खड़ी की गई है।

अठारह नागों में जो नाग आग के प्रभाव से काला हो गया उसका नाम काली नाग पड़ गया। इस नाग ने शिरढ़ गांव में अपने लिए स्थान चुना। शिरढ़ में काली नाग का मन्दिर व रथ है। यह नाग शिरढ़ से मणिकर्ण घाटी के मतेउड़ा नामक स्थान में आया। मतेउड़ा में भी इसका मन्दिर व रथ बना है। धुएं के प्रभाव से जो नाग धुएं जैसे रंग वाला हो गया, उसे धूमल नाग के नाम

से जाना जाने लगा। यह नाग हलाण गांव में स्थापित हुआ। जिस नाग का रंग पीला हो गया, उसे पीऊंली नाम मिला। यह नाग बटाहर गांव में बस गया और पूजा जाने लगा। अन्य नाग तो गोशाल से नीचे की ओर आये जब कि सागू नाग रोहतांग की ओर भागा। उसने रोहतांग के पास एक खोल अर्थात् गड्ढे को अपना निवास स्थान बनाया। जिस खोल में यह नाग रहता है उस खोल को *सागू खोल* के नाम से जाना जाता है। मढ़ी, जिसका पुराना नाम *सूआ थौलटू* था, के थोड़ा नीचे से आने-जाने वालों को दो नाग देवता दर्शन देते रहते हैं। जिस स्थान पर ये नाग देवता मिलते हैं उसे *नाग रुआड़ी* कहते हैं। बाहन्डू नाग ने नग्गर में अपना निवास स्थान बनाया। भलोगी गांव में आज़त नाग का मन्दिर व स्थान है। जौऊसा गांव में जौऊसू नाग का स्थान व मन्दिर है। कूमर नाग व्यासर गांव में आकर बस गया। इसी तरह कायस में माहुटी नाग, टकरासी में टकरासी नाग, सिरीगढ़ में सिरी नाग, केऊली वन में शंखू नाग, बूंगा में छमाहू नाग, प्रीणी में फाहली नाग, भनारा में शिरघण नाग, शरशा में शरशाई नाग, बालो में बालू नाग तथा पुनन में पुनन नाग पूजित हुए।

ये सभी नाग समय-समय पर अपने मूल स्थान गोशाल में आते हैं। गोशाल में वह भांदल अभी भी एक मन्दिर में मौजूद है जिससे इनकी उत्पत्ति हुई थी। उसे भांदल माता के नाम से जाना जाता है।

मनाली गोन्पा

मनाली बाज़ार में सियाल मार्ग पर सियाली महादेव की सराय के साथ 1960 में बौद्ध अनुयायियों ने गोन्पा बनाया है, जिसमें लाहुल-स्पिति, किन्नौर, लद्दाख, नेपाल और तिब्बत के बौद्ध धर्मावलम्बी इकट्ठा होते हैं। इस थङ्का गोन्पा में छोरतन तथा महात्मा बुद्ध की बड़ी मूर्ति विद्यमान है। इसी तरह अलेऊ में शंभला बुद्धिस्ट थंका संग्रहालय भी स्थापित है। ह्वेनत्सांग ने अपने यात्रा संस्मरण में लिखा है कि कुलूत में बीस के लगभग संघाराम थे, जिनमें एक हज़ार के करीब लामा रहते थे। ये लामा महायान सम्प्रदाय के अनुयायी थे। कुछ हीनयान का अभ्यास भी करते थे। ह्वेनत्सांग ने इसका वर्णन नहीं किया कि किस-किस गांव में ये संघाराम थे।

जगतसुख के मंदिर

मनाली से आठ किलोमीटर की दूरी पर व्यास नदी के वाम तट पर स्थित गांव जगतसुख जिसका पुराना नाम नास्त था, कुल्लू के प्रथम राजा विहंगमणिपाल की प्रथम राजधानी रहा है। इस गांव में पीति ठाकुर राज किया

करते थे। विहंगमणिपाल ने देवी हिडिम्बा के आशीर्वाद से पीति ठाकुरों को परास्त किया था। उसकी 12 पीढ़ियों ने यहां से शासन चलाया था। इसी पाल वंश परम्परा में सन् 1640 में जगतसिंह नाम का राजा हुआ जिसके नाम पर इस गांव का नाम नास्त से जगतसुख रखा गया। इतिहासकार चारुलवैल की पुस्तक में दिए गए नक्शे में इस गांव को जगचुक नाम से दर्शाया गया है। हो सकता है कि पीति ठाकुरों के ऐतिहासिक दौर में नास्त का नाम बदलकर जगचुक रख गया हो जो बाद में अपभ्रंश होकर जगसुख हो गया हो। यहां पर जमलू, रामचन्द्र, जगन्नाथ, सन्ध्या गायत्री, शिव, धौम्यऋषि तथा शिरघण नाग के मंदिर हैं।

उझली बेहड़ में जमलू का मंदिर है जिसे बड़ा देऊ भी कहते हैं। इसकी अगुआई में श्रावण माह में शाऊणी जाच मनाई जाती है। मंझली बेहड़ में श्री रामचंद्र और श्री जगन्नाथ के मंदिर हैं। उआरली बेहड़ में धौम्य ऋषि का थड़ा है जिसे धुआंगणु देऊ भी कहते हैं। इसके थड़े के साथ ही एक नाला बहता है जिसे धुआंगण नाला के नाम से जानते हैं। जब कोई राजा, देवता और दूल्हा इस नाले को लांघता है तो बलि के रूप में नारियल या बकरा भेंट किया जाता है। यहां पर धौम्य ऋषि तपस्या किया करते थे। जब पांडव अपने वनवास काल में इधर आये थे तो हिमालय की अपनी दूसरी यात्रा की सिद्धि के लिए धौम्य ऋषि को अपना कुल पुरोहित ढूंढ निकाला था।

युधिष्ठिर द्वारा किए जा रहे राजसूय यज्ञ में भाग लेने हेतु धौम्य हस्तिनापुर गए थे। धौम्य ऋषि *छीका छरौड़* से जगतसुख पहुंचने पर जहां ठहरे थे, वह स्थान आज *वाङ्णु का थला* के नाम से जाना जाता है। इसी थले के ऊपर धौम्य ऋषि के गूर की पूछ होती है। धौम्य ऋषि का गूर संध्या गायत्री के रथ के साथ हमेशा चलता है।

संध्यागायत्री मंदिर की स्थापना गोत्र हत्या नामक महापातक की शांति हेतु ऋषि धौम्य ने पांडवों द्वारा द्वापर युग के अन्त में करवाई थी। राजा उद्धरणपाल ने 1428 ई. में इसका जीर्णोद्धार किया था। सन् 1971 ई. में मंदिर के अन्दर की डेहरी को हटाकर स्थान को खुला किया गया और पंचमुखी गायत्री की मूर्ति की स्थापना की गई। संध्या गायत्री दो शब्दों सन्ध्या और गायत्री से मिलकर बना है, अर्थात् सुधि बेला में जिस शक्ति को गाया या ध्याया जाए।

मनाली व वशिष्ठ से लेकर खखनाल गांव तक जगतसुख कोठी में देवी

की आज्ञा के अनुसार जिस दिन सारे लोग धान की फसल काटते हैं, उसी दिन धान से नये चावल निकालकर उसमें चीनी मिलाकर सबसे पहले देवी के चरणों में चढ़ाया जाता है। फिर उन मीठे चावलों को पड़ोसियों में बांटा जाता है।

साल में दो बार *जौध बांधा* (सुरक्षा फेरा) दिया जाता है। पहली बार बीज वपन के दिन और दूसरी बार ग्यारी के दिन जौध बांधा जाता है। इसे मंत्रों से अभिषिक्त कर अभिमंत्रित किया जाता है।

दोचा मोचा मंदिर

जगतसुख से आगे जां में पुरातात्त्विक महत्त्व के दोचा-मोचा मंदिर में 12 इंच ऊंची तथा 8 इंच चौड़ी दोचा-मोचा की दो मूर्तियां स्थापित हैं। मंदिर प्रांगण में एक विशाल वृक्ष के नीचे गणपति की प्रस्तर प्रतिमा स्थापित है। दरवाज़ों पर विष्णु, सूर्य, लक्ष्मी, दुर्गा की मूर्तियां व पार्षद उकेरे गए हैं। इसी मार्ग पर राजा हरिसिंह द्वारा बसाया गया हरिपुर तथा सात बार जलने वाला गांव सजला भी महत्त्व के हैं।

गौरी शंकर मंदिर

गोशाल में शिखर शैली में निर्मित गौरी शंकर का मंदिर आठवीं शताब्दी में बना है, जिसमें उमा और महेश्वर की प्रतिमाएं स्थापित हैं। गुप्त काल के मंदिरों की तरह इस मंदिर में भी साज-सज्जा केवल दरवाज़ों, दीवार के ऊपरी भाग तथा आमलकों तक ही सीमित है। गौरी शंकर मंदिर के सामने संध्या गायत्री का मंदिर है।

जमलू देवता

मनाली के कुलंग, बुरूआ, मझाट तथा हामटा में देवता जमलू का पुरातन स्थान व मंदिर हैं। कहते हैं चन्द्रखणी जाने से पूर्व मलाणा का देवता जमलू सर्वप्रथम इन्हीं गांवों में रुका था। उसके बाद ही मलाणा गया था। इस की पुष्टि जमलू देव की भारथा में भी होती है– *जेठा हामटा कोन्हा मलाणा* अर्थात् बड़ा स्थान हामटा है और छोटा स्थान मलाणा है, फिर भी देवता का मूल स्थान मलाणा ही माना जाता है। ऋग्वेद में बेशुमार गणतंत्रों का वर्णन आया है जिन्हें जनपद कहा जाता था। उनमें से अधिकतर मिट गए लेकिन गणतंत्र का प्राचीनतम स्वरूप मलाणा गांव में आज भी जस का तस देखने को मिलता है। मलाणा जनपद कदाचित् इसलिए सुरक्षित रह पाया है क्योंकि यह गांव हिमालय की ऐसी घाटी में आबाद है जहां पहुंचना आसान नहीं है।

यह पांच सौ घरों का बड़ा गांव है, जो दो भागों में बंटा हुआ है, जिसमें

चार चुघ अर्थात् वार्ड बने हुए हैं। इनमें प्रतिनिधियों का चुनाव एकमत से होता है। दो भाग धारा बेहड़ तथा सौराबेहड़ कहलाते हैं और चार चुघ थम्याणी, नगवाणी, दुराणी और पलचाणी कहलाते हैं।

गांव का प्रशासन चलाने के लिए दो सदन हैं। एक ऊपरी सदन जिसे *ज्येष्ठांग* कहा जाता है। ज्येष्ठांग में ग्यारह प्रतिनिधि होते हैं, जिनमें से तीन प्रतिनिधि बड़ा पुजारी नगवाणी चुघ से, कारदार अर्थात् कर्मिष्ट थम्याणी चुघ से और गूर दुराणी और पलचाणी में से किसी एक चुघ से चुने जाते हैं। पुजारी देवता के बाद सबसे बड़े अधिकारी के रूप में कार्य करता है। कर्मिष्ट देवता के कार्य का लेखा-जोखा रखता है। गूर के माध्यम से देवता आदेश देता है। ये तीनों प्रतिनिधि स्थायी होते हैं। शेष आठ सदस्य चारों चुघों से देवता द्वारा चार वर्ष के लिए चुने जाते हैं। इनमें किसी एक के निकाले जाने पर या त्यागपत्र देने पर सभी आठ सदस्यों को सेवानिवृत्त मानकर दोबारा चुनाव कराए जाते हैं।

बड़े पुजारी का चुनाव कठिन परीक्षा के बाद पूरा हुआ समझा जाता है। उसे गड्ढा खोदकर दफ़न किया जाता है। गड्ढे के ऊपर तख्ता बिछाकर उसके ऊपर मिट्टी डालकर उस पर हल चलाया जाता है। उसमें सरसों की बीजाई की जाती है। यह रस्म कई घण्टों तक चलती है। रस्म पूरी होने पर उसे गड्ढे से बाहर निकाला जाता है और कंधे पर उठाकर देवता के सिंहासन तक ले जाया जाता है और देवता की पगड़ी पहनाकर विधिवत् पुजारी बनाया जाता है।

दूसरे सदन को *कनिष्ठांग* या कोर कहा जाता है। गांव के हर घर का मुखिया इसका सदस्य होता है। कोर के अतिरिक्त चार और अधिकारी भी चुने जाते हैं, जिन्हें पोगलदार कहते हैं। इनका कार्य पुलिस कर्मचारी जैसा होता है। ज्येष्ठांग के आदेशों का पालन करवाना, कोर के सदस्यों को मंत्रणा के लिए आमंत्रित करना इत्यादि कार्य ये पोगलदार ही करते हैं।

देवता जमलू यहां का शासक है, रक्षक है। कहते हैं एक बार देवता ने खज़ाने से एक साधु को दो टके दिए। कुछ दिन गांव में बिताने के बाद साधु दिल्ली चला गया। वहां राजा अकबर के सिपाहियों ने साधु से वे दो टके वसूल कर राजा के खजाने में पहुंचा दिए। इसके बाद राजा बीमार रहने लगा। उसका इलाज करने में वैद्य असफल हुए। तब एक रात राजा को स्वप्न में देवता जमलू ने दर्शन देकर बताया कि वह अपने खजाने से उसके दिए हुए

टके मलाणा पहुंचाए, तभी वह ठीक हो सकता है। साथ ही यह भी बताया कि खजाने में ढूंढने पर दोनों टके साथ चिपके हुए मिलेंगे। प्रातः राजा ने खजाने से वे दोनों टके निकलवाकर एक सोने की मूर्ति सहित मलाणा पहुंचा दिए। राजा अकबर द्वारा दी हुई सोने की मूर्ति आज भी मलाणा में उपलब्ध है।

देव संस्कृति में लोकवादकों की भूमिका

पहाड़ी समाज की संस्कृति यहां की लोककला के माध्यम से प्रकट होती है। लोक कला में भी संगीत कला ने समाज में मानवीय संवेदनाओं को जिस सशक्त तरीके से उभारने का कार्य किया है, शायद ही किसी और पहलु से हुआ हो। सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों के अंतर्गत संगीत के विशेष उपकरण वाद्ययंत्रों का धार्मिक, सामाजिक व आर्थिक जीवन से निकट का सम्बन्ध रहा है। प्राचीन काल से ही संगीत-वाद्यों का न केवल संगीत के कलात्मक रूप से लगाव रहा है, अपितु उनका अभिव्यंजनात्मक एवं प्रतीकात्मक रूप जीवन के प्रत्येक पहलू को स्पर्श करता दिखाई देता है। वास्तव में वाद्य भारतीय संगीत एवं संस्कृति के अभिन्न अंग बन गए हैं। जाने-अनजाने वाद्यों ने वह महत्त्व प्राप्त कर लिया है, जिसके कारण संगीत को वाद्यों पर आधारित माना गया है। हमारी संस्कृति भी संगीत-वाद्यों को अलग कर जीवित नहीं रह सकती। वाद्य चाहे जिस भी क्षेत्र का हो, वह उस क्षेत्र की संस्कृति तथा सभ्यता पर सीधा प्रकाश डालता है।

मनाली क्षेत्र के लोकवाद्य यहां के जनजीवन में इस प्रकार आत्मसात हो गए हैं, जैसे जल और दूध का सम्बन्ध। यहां प्रत्येक अवसर पर लोकवाद्य महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यहां का जनजीवन पूरी तरह देवी-देवताओं के इर्द-गिर्द घूमता है और देवी-देवताओं की प्रत्येक गतिविधि में लोकवाद्यों की महती भूमिका रहती है। इनका कोई भी उत्सव या अनुष्ठान लोकवाद्यों के बिना पूरा नहीं होता। चाहे पूजा करनी हो, मेला-त्योहार मनाना हो या गृह प्रतिष्ठा करनी हो, इन सब में वाद्यों का बजना अनिवार्य होता है। देवी-देवताओं के रथ लोकवाद्यों की थाप तथा सुरों के बिना एक कदम भी आगे नहीं बढ़ते। चतुर्विध वाद्यों में सुषिर, अवनद्ध तथा घन वाद्यों का वादन देवी-देवताओं के क्रिया-कलापों में होता है। देवपरम्परा में ततवाद्यों के वादन की परम्परा नहीं है। निम्नलिखित वाद्य देवताओं के अनुष्ठानों, मेलों तथा पूजा आदि के समय बजाए जाते हैं।

शहनाई

शहनाई एक प्राचीन लोकवाद्य है। कुल्लू में इसे छनाल़ और इसे

बजाने वालों को हेसी कहते हैं। लाल चंदन की लकड़ी से बना धतूरे के फूल के आकार का यह वाद्य एक हाथ लम्बा होता है। इसे चांदी से भी बनाया जाता है। इसमें एक-एक अंगूठे के अंतर पर बेर के आधे बीज के आकार वाले छः रन्ध्र होते हैं। इसके मुख पर रजत निर्मित टुकड़ा लगा होता है जिसे पी-पी कहते है। पी-पी में सरकंडा लगा होता है जिसे पम्पिका कहते हैं। यह पाला घास की बनी होती है। ध्वनि बाहर निकालने के लिए पम्पिका को पानी या थूक से गीला करना पड़ता है। पम्पिका को शहनाई के ऊपर के भाग में जहां चांदी या हाथी दांत का एक छल्ला लगा रहता है, जोड़ देते हैं। इस को मुंह में लगाकर सांस फूंककर स्वर निकाला जाता है। यह मांगलिक सुषिर वाद्य है जिसका वादन प्रातः - सायं देवपूजा, देवयात्रा, देवनृत्य, देवभौती इत्यादि में किया जाता है।

शंख

देवपूजा में शंख लोकवाद्य प्रमुख रूप से बजाया जाता है। नान्यदेव ने सुषिर वाद्यों में शंख का स्थान प्रमुख माना है क्योंकि मांगलिक कार्यों का शुभारम्भ शंख से होता है। इसके अतिरिक्त शांति एवं धार्मिक कार्यों में शंख का वादन होता है। कमल नेत्र विष्णु शंख को अपने बायें हाथ में धारण करते हैं। युद्ध के अवसर पर शंख वादन प्राचीन साहित्य में बहुशः वर्णित है। महाभारत में युद्ध के समय कृष्ण का शंखनाद वर्णित है।

संगीत सारादिक के वर्णन से ऐसा प्रतीत होता है कि इसमें न केवल एक स्वर, अपितु सम्पूर्ण राग का नाद निहित रहता है। सम्भवतः शंख में एक से अधिक स्वर होने की पुष्टि कालिदास ने भी की है। यदि ऐसा न होता तो गंधर्वों के गायन के समय ये शंख का उल्लेख न करते। शंख को अमंगल का नाशक माना गया है। भारतीय समाज की इस प्राचीन भावना को कालिदास ने शंख के साथ अभिव्यक्त किया है। शंख कालिदास के समय कितना मांगलिक था, इसका एक प्रमाण हमें मेघदूत से मिलता है जब यक्ष मेघ को अपने घर की पहचान बताता हुआ कहता है– "हे सज्जन मेघ! यदि तुम मेरे बताए हुए ये चिह्न भली भांति स्मरण रखोगे और मेरे द्वार पर शंख और पद्म के चित्र बने देख लोगे तो तुम मेरा घर अवश्य पहचान लोगे।" इससे यह स्पष्ट होता है कि मांगलिकता के लिए गृह द्वार पर शंख बजाने की परम्परा पुरातन काल से ही रही है।

यह वाद्य समुद्र के एक जीव से प्राप्त आवरण से निर्मित होता है। इसके लिए ग्यारह अंगुल लम्बाई के दोषरहित शंख की नाभि को खुदवाकर

उसके शिखर में एक रन्ध्र बाहर से आधा अंगुल और अंदर से उरद के प्रमाण का किया जाता है। इसे बजाने के लिए दोनों हाथों से पकड़कर पूर्ण बल से फूंक मारनी होती है जिससे धां-तु आदि नाद उत्पन्न होते हैं।

यहां भिन्न-भिन्न अवसरों पर शंख का वादन अलग-अलग ढंग से होता है। पूजा आदि में सांस को क्रमशः बाहर और अंदर को प्रवाह देना पड़ता है, जबकि शवयात्रा में केवल बाहर को ही वायु फूंकनी पड़ती है। वैज्ञानिकों का मत है कि इस वाद्य की ध्वनि जहां-जहां भी जाती है वहां से क्षय आदि दूषित रोगों के कीटाणु तथा भूत-पिशाच आदि भाग जाते हैं।

करनाहल

ताम्बे या चांदी के बने, धतूरे के फूल के आकार वाले छः फुट लम्बे वाद्य को करनाहल कहते हैं। यह वाद्य पूर्णतया पहाड़ी संस्कृति की उपज है। इसका एक सिरा एक सैंटीमीटर व्यास का होता है जिसे मुंह से सटाये जाने पर तथा फूंक मारने पर ध्वनि निकलती है। एक सिरे से लगातार आगे की ओर इसका आकार फैलता जाता है और अग्रमुख लगभग एक मीटर व्यास का होता है। करनाहल के दो भाग होते हैं जिसमें तीन गांठें होती हैं। दोनों भागों को बजाते समय मध्य से मिलाया जाता है। इसको बजाने के लिए बाहर और अन्दर दोनों ओर फूंक देनी पड़ती है। बाहर की तरफ फूंक मारने पर भारी तथा अन्दर की तरफ को पतली ध्वनि निकलती है। ध्वनि का नाद बड़ा होता है जो कि दूर दूर तक सुना जा सकता है। बाहर की तरफ को वायु पूरित करने पर थौं-थौं तथा अन्दर की तरफ पूरित करने पर कुड़ड़ड़ की मधुर ध्वनि निःसृत होती है।

करनाहल को देवयात्राओं, देउली, देवपूजा, ढूंगरी जाच, मनाली फागली आदि में विशेष रूप से बजाया जाता है। इसका वादन शुभ संदेश का सूचक होता है। ग्रामवासियों को ग्रामसभा में बुलाने के लिए देवप्रांगण में करनाहल का वादन होता है जिसे सुनकर आवश्यक से आवश्यक कार्य को छोड़कर भी परिवार के मुखिया को सभा में तुरन्त उपस्थित होना पड़ता है। देवयात्राओं में भी एक गांव से दूसरे गांव को जाते हुए करनाहल का वादन थोड़े-थोड़े अन्तराल पर होता है। जोड़ी करनाहल का वादन कर्णप्रिय होता है।

काहल

संस्कृत में काहल को कहली कहा गया है। इसके भी करनाहल के समान दो भाग होते हैं तथा लम्बाई में भी उसके समान है। परन्तु अन्तर इसके

अग्रभाग के मुख की परिधि में है। इसके अग्रभाग के मुख की परिधि लगभग एक फुट होती है। इसे बाहर को सांस फूंक कर बजाया जाता है जिससे भों भों की ध्वनि निःसृत होती है। यह वाद्य ताम्बे से बनाया जाता है। यह फागली के अवसर पर बजाया जाता है।

पंचमुखी काहल

यह ताम्बे से निर्मित पांच मुख वाला सुषिर लोकवाद्य है। इसका मुख भाग जुड़ा हुआ होता है। मुख भाग से दो अंगुल ऊपर से धतूरे के फूल के आकार के पाँच छोटे-छोटे खोल होते हैं। इसे बजाये जाने पर हा–हू की ध्वनि निकलती है। यह वाद्य देवनृत्य तथा खण्डा निकालने के अवसर पर बजाया जाता है।

भोटू काहल

यह वाद्य ताम्बे या पीतल धातु से बना होता है, जिसकी नलिका शंकु के आकार की होती है जो तीन खण्डों से संयुक्त होती है। इस वाद्य के दूसरे छोर का भाग कीप के आकार में खुला हुआ होता है। मुख भाग के द्वारा वायुपूर्ण करने पर ध्वनि उत्पन्न होती है। इसकी लम्बाई तीन से चार फुट होती है। यह भी खण्डा निकालने के अवसर पर अन्य वाद्यों के साथ बजता है।

रणसिंगा

रणसिंगा को नरसिंगा, नृसिंगा तथा हरणसिंगा भी कहते हैं। यद्यपि यह सम्पूर्ण भारत तथा हिमाचल में बजता है परन्तु कुल्लू जनपद के मनाली क्षेत्र में इसकी विशिष्ट वाद्य के रूप में मान्यता है। यह अंग्रेज़ी के S अक्षर के आकार का होता है। यह ताम्बे, पीतल या चांदी आदि धातुओं से बना होता है। करनाहल की तरह इसके भी दो भाग होते है, जिनमें तीन गांठें होती हैं। यह देववाद्य के रूप में भी जाना जाता है। इसमें फूंक बाहर और अन्दर मारने पर नाद निकलता है।

ढोल

वैदिक काल में ढोल को पणव कहने का उल्लेख मिलता है। इस वाद्य को भरत ने पुष्कर वाद्यों का प्रमुख अंग माना है। बौद्ध एवं परवर्ती बौद्ध साहित्य में पणव का बहुतायत में उल्लेख हुआ है। ढोल शब्द की व्युत्पत्ति फारसी के दुहुल शब्द से भी मानी जाती है। ढोल शब्द महात्मा बुद्ध के समय में भी प्रयुक्त होता था। इसे आदुम्बर के नाम से भी पुकारा जाता था। उपनिषदों में लकड़ी के ढोल का नाम वानस्पति था। इसके महत्त्व को लोकगीतों में भी बड़े सुंदर

ढंग से चित्रित किया गया है–

बाजड़े ढोलिया ढीली नाटी
नौचणा आसा ध्याड़ी राची।

अर्थात् हे ढोलवादक! तू मन लगाकर ढोल पर धीमी लय को छेड़, जिस पर हम सारी रात नृत्य में मस्त रहेंगे। नाटी में ढोल पूरे वाद्यवृंद का अगुआ होता है। ढोल बजाने वाले को ढोली कहा जाता है। बजाते समय वही पूरे वाद्यवृंद को संचालित करता है। पीतल का खोल जो लगभग बीस इंच लम्बा होता है और जिसके मुख का व्यास 10 इंच होता है, दोनों ओर से मृत बकरी के चमड़े से मढ़ा जाता है। मुख के किनारे पर चमड़े के घेरे में आठ छिद्र बनाकर उनमें पतली रस्सी से पूड़ों को मढ़ा जाता है। कभी-कभी सुतली की जगह चमड़े की रस्सी का प्रयोग भी किया जाता है। ढोल के दाहिने पुड़े को लकड़ी, जिसे चोभे कहते हैं, से बजाया जाता है। बायें पूड़े को हाथ से ही बजाया जाता है।

दराघ

यह लोकवाद्य ढोल से कुछ बड़ा होता है। इसके दोनों सिरों को चमड़े से मढ़ा जाता है। इसका वादन हुलकी तथा देवखेल में होता है।

ढोलक

देवस्तुति में ढोलक का वादन किया जाता है। इसका खोल हमेशा लकड़ी से ही बनाया जाता है। कपास की रस्सी से ढोलक को बांधा जाता है। रस्सी को ढीला करने और तानने के लिए दो-दो रस्सियों के बीच में पीतल या लोहे के छल्ले लगे होते हैं। इन्हें सरकाने से इसके नाद को कम या अधिक किया जाता है। यह देववाद्य भेखल की लकड़ी के खोल से बनाया जाता है, जिसकी लम्बाई लगभग दो फुट होती है। पूजा-अर्चना के बाद ही इसमें भेड़ की खाल के पूड़े चढ़ाये जाते हैं। सामान्यतः यह भी ढोल सदृश होता है। फर्क सिर्फ इतना है कि ढोल को हर कोई बजा सकता है जबकि इसे देवता द्वारा चुना हुआ व्यक्ति ही बजाता है, जिसे ढाढी कहते हैं। इस लोकवाद्य को बजाने से पूर्व ढाढी को अपनी जेब से बीड़ी-तम्बाकू इत्यादि चीज़ें बाहर निकालनी पड़ती हैं।

ढौंस

कुल्लू घाटी में प्रचलित इस लोकवाद्य को ढवस भी कहते हैं। जनश्रुति के अनुसार ढौंस लोकवाद्य में देवता की आत्मा वास करती है। इसके वादन से ही देव प्रक्रिया में गूर को संकेत मिलता है। यह भी भेखल की लकड़ी से

निर्मित होता है। इसकी लम्बाई डेढ़ फुट होती है। परिधि 39 अंगुल और मुख का व्यास 12 अंगुल के लगभग होता है। चमड़े से मढ़ते समय देवता की उपस्थिति में पूजा करके इसमें देवात्मा का प्रवेश करवाया जाता है। किनारे में रैहुंश की लकड़ी में चर्म लपेट कर सात रन्ध्र करके छिद्रों के ऊपर पवित्र लाल डोरी से लाल रंग के कपड़े को बांधा जाता है। इस वाद्य के वादन हेतु जो काठी प्रयोग में लाई जाती है, उसे डग्गा कहते हैं।

नगारा

वैदिक काल में अवनद्ध वाद्यों में दुंदुभि तथा भूदुंदुभि जैसे चर्मवाद्यों का अधिक प्रचलन था। भूमिदुंदुभि एक बड़ा नगारा होता था जिसे भूमि खोद कर नांद जैसी वस्तु बनाकर इसे गड्ढे में स्थिर करते थे। फिर वृषभ के रोमयुक्त चमड़े से मढ़ देते थे। इसका वादन शंकुओं से किया जाता था जिसे आहनन कहते थे। यह रणक्षेत्र तथा धार्मिक कृत्यों का प्रमुख वाद्य था।

नगारा लोकवाद्य समस्त कुल्लू जनपद में प्रचलित है। इसे कहीं नगाड़ा तथा कहीं नगारटू कहा जाता है। यह कांसे, पीतल अथवा ताम्बे का त्रिशंकु के आकार का एक खोल होता है, जिसके मुख को गाय या बैल की खाल से मढ़ा जाता है। पुड़ा मढ़ने के लिए चमड़े की रस्सी बनाई जाती है। रस्सी से जाला बुनकर पुड़े को मढ़ा जाता है। इसके मुख का व्यास लगभग एक फुट होता है। इस वाद्य को स्वतंत्र रूप से नहीं बजाया जाता। इसका वादन ढोल के साथ होता है। इसे दो समान लकड़ियों से बजाया जाता है, जिन्हें चोभे कहा जाता है। नगारा वादक को नगारची कहते हैं। यह देवता की प्रत्येक कार्यवाही में ढोल की संगति करता है।

बाम

देवघाटी कुल्लू में प्रचलित बाम लोकवाद्य अपनी घोर गर्जना से देवपर्वों में जोश पैदा करता है। यह भी त्रिशंकु आकार का एक बड़ा खोल होता है, जिसके मुख का व्यास डेढ़ हाथ होता है। बाम बजाने वाले को बामची कहा जाता है। इसे मोटी-मोटी छड़ों से पूरी शक्ति लगाकर बजाया जाता है।

डफाल

डफाल को डफ भी कहते हैं। इसका व्यास एक हाथ से डेढ़ हाथ के लगभग होता है। इसे एक तरफ ही बकरी की खाल से मढ़ा जाता है। यह वाद्य फागली तथा देवपूजा के समय बजाया जाता है।

भाणा

कांसे का बना थाली सदृश वाद्य, लटकाने के लिए जिसके सिरे पर छेद करके पतली लोहे की तार बांधी जाती है। इसे लकड़ी की छड़ी से बजाया जाता है।

घण्टी

घण्टी कांसे या पीतल की बनी हुई होती है। मूलभाग से मुखभाग की परिधि ज़्यादा होती है। प्रासाद के ऊपर एक दण्ड होता है। प्रासाद के गर्भ को हाथ में लेकर इसका वादन करते हैं। इसे देवपूजा में बजाया जाता है। प्रायः मंदिरों के तोरणद्वार के साथ बड़ी-बड़ी घण्टियां देखने को मिलती हैं। मनोकामना पूर्ण होने पर भक्तजनों द्वारा देवताओं को घण्टियां भेंट करने की परम्परा भी रही है।

कणसी

यह वाद्य कांसे या पीतल का बना होता है। इसका मुख दो इंच का होता है। इसका मध्य भाग अंगुल भर नीचा रहता है। उस निम्न भाग के ठीक बीच में एक रन्ध्र होता है जिसमें डोरी पिरोई जाती है। जो उन्नत भाग निम्न प्रदेश को घेरे रहता है वह डेढ़ इंच का होता है। कणसी को दोनों हाथों की तर्जनी व अंगूठे से डोरी पकड़कर बजाते हैं। बायें हाथ के ताल से उत्पन्न ध्वनि घनता से युक्त होती है। कणसी का प्रयोग होली गायन, पूजा तथा देवस्तुति में होता है।

छंछाला

छंछाला लोकवाद्य अष्टधातु से निर्मित होता है। इसके मुख का व्यास छः इंच होता है। यह मध्य में स्तनवत् दो इंच गहरा होता है। कणसी की तरह मध्य में एक डोरी निकली होती है। जिसमें कपड़ा बांधकर हाथ की मुट्ठी से पकड़ने योग्य बना लेते हैं। यह युगल रूप में बजता है। दोनों को हाथों से टकराकर इसमें छन्नाक की आवाज़ ध्वनित होती है।

देव अनुष्ठान, मेले आदि मनाने के लिए देवी-देवताओं के पास वादकों का एक समृद्ध वर्ग है जो हर अनुष्ठान में उपस्थित रहता है तथा वाद्यों के वादन से इसे रुचिकर बनाता है। ये वादक ब्राह्मण, राजपूत, वैरागी, हेसी, लुहार और कोली आदि समुदाय से सम्बन्ध रखते हैं। अधिकांश देवताओं के पुजारी ब्राह्मण होते हैं। पूजा करते समय इन्हें घण्टी तथा शंख बजाना पड़ता

है। पूजा के लिए नहा-धोकर धोती पहनकर ये पुजारी बायें हाथ से घण्टी बजाते हैं तथा दायें हाथ में धड़छ, जिसमें धूप जला होता है, को हिलाते हैं। जब तक घण्टी बजती रहती है तब तक ही धड़छ भी हिलाया जाता है। इसी दौरान पुजारी देव स्तुति में आरती तथा मंत्र भी गाता रहता है, अर्थात् गायन तथा वादन एक ही समय में एक साथ किया जाता है। जब पूजा सम्पन्न होती है उसके बाद पुजारी शंख बजाता है।

कई देवताओं के पुजारी राजपूत होते हैं। वे भी ब्राह्मण पुजारी की तरह ही पूजा विधि को निभाते हैं। घण्टी तथा शंख बजने के साथ-साथ रणसिंगे का वादन भी ब्राह्मण तथा राजपूत ही करते हैं। खण्डा निकलने के अवसर पर करनाल, रणसिंगा, छंछाला, कणसी, काहल, भोटूकाहल आदि लोकवाद्यों को भी राजपूत और ब्राह्मण ही बजाते हैं।

ब्राह्मण एवं राजपूत वादकों की आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति अन्य कलाकारों से अच्छी है। अधिकांश देवी-देवताओं के नज़राने या भेंट आदि से होने वाली आय में से कुछ प्रतिशत हिस्सा पुजारियों को मिलता है। कहीं-कहीं इन्हें निश्चित धनराशि भी मासिक तौर पर मिलती है। जिन-जिन देवताओं के पास अपनी खेती योग्य भूमि थी या है, वहां उनकी ज़मीनों के कुछ भाग पुजारियों को भी मिले हैं, जिससे इन्हें परिवार के भरण-पोषण में अच्छी खासी मदद मिली है। पुजारियों का काम नियमित होता है। इसलिए भी उनके लिए आर्थिक सहायता की व्यवस्था रही है।

रणसिंगा, छंछाला, कणसी, काहल, भेटूकाहल आदि बजाने वाले वादक निश्चित नहीं होते। इन्हें देवता की हार का कोई भी व्यक्ति बजा सकता है। ये वाद्य विशिष्ट अवसरों पर ही बजाये जाते हैं। इसलिए इन्हें बजाने वालों को कोई भी मेहनताना नहीं दिया जाता है। जब-जब देवता का कोई विशेष अनुष्ठान होता है, तब-तब बजाने वालों को देवता की पगड़ी सम्मान स्वरूप दी जाती है।

ढोल, ढौंस, नगाड़ा, बाम तथा करनाहल बजाने वाले लोकवादक लुहार, कोली आदि समुदाय से सम्बन्ध रखते हैं। ये कुशल एवं व्यावसायिक वादक होते हैं। ढोल, नगाड़ा तथा करनाहल बजाने के लिए विशेष दक्षता की आवश्यकता होती है। शहनाई वादक हेसी और तुरही समुदाय से सम्बन्ध रखते हैं। ढौंस वादक ढोल, नगाड़े, भाणा, करनाहल तथा शहनाई के वृंद को संचालित करता है। इनमें ढोल वादक को ढोली, नगारा वादक को नगारची,

बाम वादक को बामची, ढौंस वादक को ढौंसी, तथा करनाहल वादक को करनाहलची कहते हैं।

देवकार्य के प्रत्येक अवसर में इनकी उपस्थिति अनिवार्य होती है। प्रातः सायं की पूजा में भी इनका वाद्य बजाना करना अनिवार्य होता है। इसलिए इनकी उपस्थिति इसमें ज़रूरी होती है। वाद्ययंत्रों को बजाने का इन्हें कोई निश्चित पारिश्रमिक नहीं मिलता है। कुछ देवताओं ने इन्हें जोतने के लिए ज़मीनें दे रखी हैं तथा जिन देवताओं के पास भूमि नहीं है, वहां वादकों को कुछ नहीं मिलता। जब कोई परिवार हार में देवभौती तथा भण्डारे या देउली के अवसर पर देवता को अपने घर ले जाता है, उस समय इन्हें छौका मिलती है। पेट भर भोजन करने के बाद एक आदमी का अतिरिक्त भोजन लेने को छौका कहा जाता है। पूर्व में रसोई में पका हुआ भोजन मिलता था, बाद में बिना पका चावल, आटा या गेहूं इत्यादि दिये जाने लगे। आजकल इसके बदले में अनाज की कीमत के बराबर रुपये दिये जाने लगे हैं। जब कभी देवता का अपना पर्व होता है तब इन्हें कुछ नहीं मिलता। इसके अलावा वर्ष में दो बार इन वादकों को हार के प्रत्येक परिवार से एक-एक पथा अनाज मिलता है, जिसमें लगभग डेढ़ किलो अनाज आता है। जिस हार में सौ परिवार होते हैं वहां पर प्रत्येक वादक को खरीफ तथा रबी दोनों फसलों में दो-दो पथा अनाज मिलता है जिससे इनके परिवार का थोड़ा बहुत गुज़ारा हो जाता है।

वादकों को प्रायः परम्परानुसार देख-देखकर और स्मरण शक्ति द्वारा वादन करना होता है। एक कुशल वादक अपने और सगे सम्बन्धियों के बच्चों को बचपन से ही ढोल-नगाड़ा बजाने की शिक्षा देता है। इसी प्रकार करनाहलची तथा शहनाई वादक भी बचपन से ही अपने बच्चों को सिखाता है। हालांकि शहनाई वादन में अत्यंत अभ्यास एवं कठिन परिश्रम की आवश्यकता होती है। इन्हें कई-कई घण्टों तक अभ्यास करना पड़ता है। कुछ वर्षों पहले तक वादक अधिकांशतः निरक्षर होते थे, इसलिए ये वाद्यवादन करना अपना फर्ज़ समझते थे। सामाजिक दायित्व भी यही बताता था कि देवता ने यह काम इन्हें स्वयं सौंपा है। इसलिए ये ढोल, नगाड़ा बड़े शौक से बजाते थे। अब जबकि ये शिक्षित होने लगे हैं, आरक्षण सुविधा के कारण इन्हें सरकारी विभागों तथा उपक्रमों में नौकरियां मिलने लगी हैं। इसलिए अब देववाद्यों को बजाने में इनकी रुचि घटने लगी है। कई देवताओं के पास तो वादक ही नहीं रहे हैं। हां देवता के विशेष अनुष्ठानों तथा पर्वों में अभी भी ये लोग बजाते हैं। कुल्लू

जनपद में पढ़े-लिखे तथा निरक्षर सब का देवी-देवताओं में अगाध विश्वास है, इसलिये यहां सभी इनके विशेष उत्सवों में उपस्थित होना नहीं भूलते। इस अवसर पर हाज़री देने को चाकरी कहते हैं।

देवी-देवताओं का श्रद्धालु भक्तों के साथ गहरा रिश्ता होता है। इनके प्रत्येक भाव को व्यक्त करने में देव संगीत का विशिष्ट योगदान रहता है। देवी-देवता जब भी गीतों और वाद्यों की धुनों की सहायता से किसी रोगी का उपचार करते हैं या भूत-प्रेत से मुक्ति दिलाने का प्रयत्न करते हैं तो उस समय बजाया जाने वाला ताल शास्त्रीय तालों की तरह टुकड़ों, परनों तथा तिहाइयों में निबद्ध रहता है, जिससे विशेष प्रभाव उत्पन्न होता है। जब देवता ने अपने प्रवक्ता चेले के शरीर में प्रवेश करके अपना प्रवचन या आदेश सुनाना होता है तो उस समय प्रयुक्त होने वाला वाद्य संगीत तथा शहनाई, करनाल, रणसिंगे की स्वर लहरी उपस्थित श्रोताओं के शरीर में कम्पकम्पी पैदा करती है।

जब कभी देवताओं के रथ को मंदिर के अन्दर से प्रांगण में लाया जाता है तो वह वाद्ययंत्रों पर बजने वाली तालों की लय के आधार पर आगे-पीछे घूमता है। देवरथ को प्रायः दो पुरुष उठाते हैं। महिलाओं का देवता के रथ को उठाना वर्जित होता है। ताल के प्रभाव के सहारे ही रथ चलते हैं, दौड़ते हैं तथा किसी स्थान विशेष पर जाकर खड़े हो जाते हैं। प्रांगण जिसे *सौह* भी कहते हैं, में वे चारों दिशाओं में जाकर प्रणाम करते हैं। इस प्रक्रिया को नुआस देना कहते हैं।

नुआस में वाद्ययंत्रों की लय के वशीभूत होकर सभी देवरथ उठाने वाले जमाणियों या कहारों से इस बाबत पूछा गया तो उनका कहना था कि देवरथ उठाते हुए देवधुन के अनुसार देवता उन्हें आगे-पीछे धकेलता है। कई बार वे जान बूझकर किसी विशेष दिशा की ओर न जाने का संकल्प करते हैं परन्तु ढौंस की थाप और लय के प्रभाव से देवरथ उसी तरफ मुड़ जाता है। उन्हें लगता है कि देवधुन में ऐसी अदृश्य शक्ति है जो उनके पैरों की दिशा को बदल देती है।

नये घर की प्रतिष्ठा करने को घरपेशनी कहते हैं। इस अनुष्ठान में घर के चारों ओर सूत्र पिरोया जाता है। इस प्रक्रिया को घर बांधना भी कहते हैं। यह इसलिए बांधा जाता है ताकि आसुरी शक्तियों से घर तथा परिवार की सुरक्षा हो सके। मान्यता है कि इससे घर में सुख समृद्धि बढ़ती है और शांति बनी रहती है। सूत्र बांधते समय भी देव आवाहन की धुन भरैऊण, जगाऊण,

तथा खड़यायत तालों के बजने से आसुरी शक्तियां दूर भाग जाती हैं। कई बार किसी व्यक्ति में जब आसुरी शक्ति प्रवेश कर जाती है तो ऐसे समय भरैऊण, जगाऊण, पतियाऊण ताल के वादन से वह शक्ति उसके शरीर में छटपटाने लगती है। उसके छटपटाने पर देवता का चेला उसके शरीर में पानी के छींटे देकर उसे उस व्यक्ति विशेष के शरीर से बाहर निकाल देता है। इसी प्रकार बीमार व्यक्ति पर भी देवधुन का असर होता है। पूजा के समय घण्टी तथा शंख ध्वनि होने पर उसका सुमधुर नाद सुनकर दूर बैठा व्यक्ति भी देवता के प्रति श्रद्धा में सिर झुकाता है।

चतुर्थ अध्याय

मेले-त्योहार एवं अनुष्ठान

मनाली के सभी वर्ग, जाति एवं वय के लोग देवी-देवताओं के मंदिर में पूजा, अनुष्ठानों, मेलों तथा त्योहारों इत्यादि के अवसर पर इकट्ठे होकर अपनी भावनाओं का आदान-प्रदान करते हैं, मेल-जोल बढ़ाते हैं तथा अपने दुख-दर्द से छुटकारा पाने का प्रयत्न करते हैं। देवी-देवताओं के प्रति गहरी आस्था होने के कारण लोगों का इनके साथ आत्मीयता का सम्बन्ध होता है। ये दोनों एक दूसरे के पूरक कहे जा सकते हैं।

इन देवी-देवताओं के वर्ष भर के मेलों, उत्सवों व पर्वों में इनके मंदिरों व रथों के पास श्रद्धालुओं की भीड़ लगी रहती है। ये सभी देवी-देवता माघ की संक्रांति को शक्ति अर्जित करने के लिए इंद्र-दरबार में जाते हैं तथा फाल्गुन की संक्रांति को लौटकर अपनी भारथा सुनाते हैं और लोगों को सुख-समृद्धि का आशीर्वाद देते हैं। फाल्गुन-चैत्र से आरम्भ होकर इनके मेले एवं पर्व विजय दशमी तक अनवरत चलते हैं। चैत्र-बैसाख तथा श्रावण-भादों में इनके प्रमुख उत्सव होते हैं। देव मंदिरों में होने वाले मेलों में *जगती पूछ* का अनुष्ठान सबसे महत्त्वपूर्ण होता है।

जगती पूछ

बड़ी जगती पूछ मनाली के नग्गर गांव में होती है। प्राकृतिक आपदाओं, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, अकाल, भुखमरी आदि में सभी देवी-देवताओं के प्रतिनिधि गूर, पुजारी आदि रघुनाथ के मुख्य सेवक के आमंत्रण पर अपने-अपने देवताओं के घण्टी-धड़छ लेकर इस पवित्र स्थान पर इकट्ठे होते हैं। इस सभा का आयोजन कुल्लू राजपरिवार ठारह करडुओं के आदेशानुसार करता है। जगती पूछ का आरम्भ राजपरिवार के मुखिया द्वारा ठारह करडू का धड़छ जलाकर सभी देवी-देवताओं के आवाहन के साथ किया जाता है।

इसी तरह मनु ऋषि की अपनी जगती पूछ देवमंदिर के सामने प्रांगण में पूरी की जाती है। प्रांगण में लगभग 3 फुट चौड़ा तथा 6 फुट लम्बा चबूतरा है, जिसे *थौल़* कहते हैं। देवता इस पर बैठता है तथा गूर इसके सामने पटड़ी

पर बैठता है। इस समय वह चोला, धोती व टोपी पहने होता है। गांव के सभी लोग एकत्र होते हैं। धूप जलाया जाता है। तत्पश्चात् ढौंसी के संकेत पर उसकी अगवाई में दूसरे वादक ढोल, नगाड़े, शहनाई, करनाहल, रणसिंगे, भाणा आदि वाद्ययंत्र बजाते हैं। पुजारी घण्टी बजाता है। इस समय पहले देवआवाहन की धुन बजाई जाती है, तत्पश्चात् *भरैऊण ताल* बजता है। इस समय पूरा वातावरण देवमय हो उठता है। जो भी श्रद्धालु वहां बैठे होते हैं उनके रोयें-रोयें खड़े हो जाते हैं। उन्हें ऐसा महसूस होता है मानो उनके अन्दर कोई अदृश्य शक्ति प्रवेश कर गई हो। वाद्ययंत्रों की धुनों के असर से गूर का ध्यान एकाग्र हो जाता है। एक ओर वाद्ययंत्रों पर धुन बजती रहती है और दूसरी ओर श्रद्धालु देवता के प्रकट होने की प्रार्थना करते हैं। जब धुन अपने चरम पर होती है तब चेले में देवशक्ति का संचरण होता है। वह कांपने लगता है। थोड़ी देर कांपने के बाद वह अपने सिर की टोपी पीछे की ओर गिरा देता है, जिसे उसके पीछे बैठा व्यक्ति अपने हाथ में पकड़ता है। उसके तुरन्त बाद वाद्ययंत्रों पर धुन बदली जाती है और सबके शरीर की उत्तेजना खत्म हो जाती है। तब गूर अपना इतिहास सुनाता है और प्रजा की सुख-समृद्धि के उपाय सुझाता है तथा घरेलू और निजी समस्याओं का समाधान करता है। जब देवता का जन्मदिन होता है, देवता स्वर्ग या इन्द्रलोक से फाल्गुन या चैत्र की संक्रांति को वापिस लौटता है, काहिके का उत्सव होता है, बर्शोआ होती है, श्रावण-भादों के मेले होते हैं, यात्रा से देवरथ लौटकर आता है तब-तब जगती पूछ होती है। जगती पूछ के साथ ही देव मेले का आरम्भ होता है।

छौट

मनु ऋषि की मूर्ति जिस दिन प्रकट हुई थी, वह बैसाख मास के छः प्रविष्टे थे। आज भी इसी दिन मनु महाराज का प्राकट्योत्सव छौट के नाम से मनाया जाता है। इसमें गोशाल का गौतम, व्यास, कंचननाग भी साथ रहता है। मनु मंदिर में जगती तथा देव कार्यवाही सम्पन्न होने के बाद मेला लगता है। मेला एक वर्ष पहले दिन मनाली गांव में लगता है और दूसरे दिन गोशाल में *भौती* के साथ सम्पन्न होता है, दूसरे वर्ष गोशाल में मेला लगता है और मनाली गांव में भौती है। भौती शब्द संस्कृत भक्त से बना है। भौत पके चावल को कहते हैं। देवते के भोज, जिसमें भौत बनता है, को भौती कहते हैं। इस दिन सभी मेहमान तथा मेज़वान देवता की तरफ से सामूहिक भोज करते हैं जिसे *देऊ भौती* कहा जाता है।

गट्टी छेड़नी

भादों मास के दूसरे रविवार को गट्टी छेड़नी उत्सव होता है। जिसमें देवता गांव वालों की सुरक्षा के लिए टाला, काहिका या शांद करने का आदेश देता है।

टाला

जब गांव पर कोई विपत्ति आने की सम्भावना होती है तब देवता मनु गांव वालों की सुरक्षा हेतु टाला करने का आदेश देते हैं। इसे कार देना भी कहते हैं। देवता अपने पूजा क्षेत्र जिसे *हार* कहते हैं, में सुरक्षा परिक्रमा करके कार बांधता है। टाला का अर्थ होता है टालना अर्थात् गांव पर आने वाली विपत्ति को टालना। भादों के दूसरे रविवार को *गट्टी छेड़नी* के दिन देवता टाला की तिथि घोषित करता है। टाले के लिए निर्धारित किए गए दिन की प्रातः देव प्रांगण में देवी हिडिम्बा तथा मनु ऋषि के संयुक्त रथ को मंदिर से बाहर निकाला कर देव कार्यवाही के लिए गूर को *छेराया* जाता है। गूर जगती पर बैठ कर अपने आवेश में आ जाता है। देवता के सभी कारकुनों को पगड़ी पहनाई जाती है। तत्पश्चात् मेढ़े की पूजा-अर्चना की जाती है और देवता का रथ गूर सहित पूरी *हार* की परिक्रमा करता है। फिर मेढ़े को काट कर सभी मंदिर लौटते हैं। इससे यह माना जाता है कि गांव की सुरक्षा हो गई और अब कोई अनहोनी घटना नहीं घटेगी।

काहिका

गट्टी छेड़नी के दिन ही मनु ऋषि काहिका करने की तिथि निर्धारित करते हैं। मनाली गांव में काहिका कई वर्षों के बाद होता है। यह नरमेध यज्ञ का ही एक रूप है। इस के आरम्भ होने के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न मत हैं। एक मत के अनुसार देव-असुर संग्राम में रूमटू सौह में जब भारी रक्तपात के बाद देवताओं की जीत हुई थी, तो उसके प्रायश्चित्त के रूप में देवताओं ने काहिके का आयोजन करवाया था। एक अन्य कथा के अनुसार एक बार राजा इन्द्र ने गौतम ऋषि की भार्या अहल्या का धोखे से शील भंग किया था, जिस कारण गौतम ऋषि ने उसे शाप दिया था कि उसके पूरे शरीर में योनियां उभरें। उस शाप से छुटकारा पाने के लिए उसे काहिका करना पड़ा था।

एक अन्य कथा के अनुसार नारायण के हाथों कन्या का वध हो गया था, जिसके पाप के प्रायश्चित्त हेतु काहिका किया गया था, इसी कारण मनाली में जब गांव में बहुत उपद्रव होने लगते हैं या गांव पर घोर संकट आने की संभावना होती है, जिनका निवारण टाले से नहीं हो पाता तो ऐसे में देवता

काहिका करने को कहता है।

काहिके में नौड़ की विशेष भूमिका होती है। कहा जाता है कि किसी ज़माने में नौड़ जाति के लोग राजा इन्द्र के दरबार में चाकरी और उनकी औरतें इन्द्र के दरबार में नृत्य करती थीं। एक समय भगवान् विष्णु को पृथ्वी लोक में आने पर कुष्ठ रोग हो गया। उन्हें किसी ने सलाह दी की राजा इन्द्र के दरबार में परियां नाचा करती हैं, उनके छूने मात्र से उनका आधा कुष्ठ समाप्त हो जाएगा। नारायण राजा इन्द्र के दरबार में गए। कहा जाता है कि वे परियां किसी से भी नहीं छूती थीं। इस कारण नारायण चुपके से उनके पल्लू से छू लिए, जिससे उनका आधा कोढ़ ठीक हो गया। इस चमत्कार को देखकर उन्होंने राजा इन्द्र से नौड़ जाति के लोगों को अपना पूरा कुष्ठ रोग दूर करने के लिए पृथ्वी पर भेजने का आग्रह किया। राजा इन्द्र ने तितरू, पवितरू नामक पुरुष तथा उनकी पत्नियों चैहीं, चकोरी को पृथ्वी पर जाने का आदेश दिया, परन्तु उन्होंने पृथ्वी पर जाने से इनकार किया। तब इन्द्र ने उन्हें विश्वास दिलाया कि नारायण का कुष्ठ दूर होते ही उन्हें स्वर्ग लोक में वापिस बुला लिया जाएगा। इन्द्र के विश्वास दिलाने पर वे पृथ्वी पर आने के लिए तैयार हो गए। जब उन्होंने स्वर्ग के दरवाजे को खोला तो पृथ्वी को नीचे बहुत दूर देखकर कूदने से डरने लगे। तब इन्द्र ने एक बकरी को पृथ्वी पर फेंका। जब उन्होंने देखा कि बकरी पर कोई असर नहीं हुआ और वह पृथ्वी पर उतर कर भेखल के पत्ते चरने लगी तो उन्हें विश्वास हो गया कि वे मरेंगे नहीं। तब वे जब पृथ्वी पर कूदे तो सबसे पहले रूमटू सौह में उतरे। उसके बाद रूमटू सौह में कुष्टू *काहिका* लगाया गया, जिसमें मन्त्रों द्वारा मण्डल लिखा गया और उसके बाद 360 देवी-देवताओं की स्थापना हुई। काहिके की रस्म तो पूरी हुई ही, विष्णु का कुष्ठ भी दूर हो गया। उसके बाद वादे के मुताबिक तितरू, पवितरू और चैहीं, चकोरी को वापिस इन्द्रपुरी जाने के लिए कहा गया, परन्तु जब वे इन्द्रपुरी जाने लगे तो उन्हें वहां का रास्ता याद न रहा। वे निराश हो गए। उसी वेश में नारायण ने उन्हें पृथ्वी पर रहने का आग्रह किया ताकि पृथ्वी पर जहां भी गो हत्या, ब्रह्म हत्या या कोई घोर पाप हुआ हो वहां वे काहिका होने पर उन्हें पाप से मुक्त करवायें। तब से वे यहीं पृथ्वी पर रहने लगे।

काहिके में एक वेदिका बनाकर उसके नीचे देवताओं के रथ रख कर फिर नौड़ को जल पिला कर मारा जाता है, तत्पश्चात् उसे देव शक्ति द्वारा जीवित किया जाता है। इस तरह काहिका करने से पाप का प्रायश्चित्त हो जाता है।

नया सम्वत्

चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को नया सम्वत् सभी हिन्दुओं द्वारा नये साल के रूप में मनाया जाता है। कुल्लू के मनाली क्षेत्र में मनाये जाने वाले नए सम्वत् में यहां के लोक रिवाज़ की झलक देखने को मिलती है। इसे बारह मास की संक्रांति के अतिरिक्त तेहरवीं संक्रांति कहा जाता है क्योंकि इसको मिलकर तेरह साज़े हो जाते हैं। मनु ऋषि, देवी हिडिम्बा, संध्या गायत्री, शूरू री शबरी, गौतम ऋषि आदि के मंदिरों में भी प्रातः देवपूजन कर नये संवत् को मनाया जाता है।

इस दिन भोर होने से पूर्व ही मीठा खाने की परम्परा है। जनविश्वास है कि यह दिन जैसा गुज़रेगा, वैसा ही पूरा वर्ष व्यतीत होगा। अतः इस दिन लड़ाई-झगड़े से बचने की कोशिश की जाती है। यह दिन मीठा गुज़रे अर्थात् मधुरता से सुखपूर्वक बीते इसलिए भोर होते ही घर की गृहिणी सभी सदस्यों को गुड़ खिलाती है। यदि बच्चे सोये हुए हों तो उनके मुंह में सोये-सोये ही गुड़ डाल दिया जाता है। गुड़ के सेवन के कारण ही इसे *गुड़ला साज़ा* भी कहते हैं। समस्त परिवार को गुड़ खिलाने के बाद गृहिणी गुड़ व आटे को पानी उबालकर गड़ाणी बनाती है। कभी-कभी इसमें घी भी डाला जाता है। परिवार के सभी सदस्यों के जागने पर इस गड़ाणी को पिलाया जाता है। प्रातः के खाने में मीठा भात व आटे के चिल्हड़ू (चीले) बनाये जाते हैं, जिन्हें गड़ाणी के साथ खाया जाता है। मीठे बबरू भी बनाये जाते हैं। पूरे दिन मीठे चावल, चिल्हड़ू तथा बबरू पड़ोस और सगे सम्बन्धियों में भी बांटे जाते हैं।

धूप निकलने पर कुल पुरोहित आकर नये साल की पत्री (पंचांग) सुनाता है। वह इस वर्ष का नाम, राजा, मंत्री तथा वर्ष में होने वाली घटनाओं, अन्न-धन की स्थिति, वर्षा, बाढ़ और अग्निकांड आदि बातों का वर्णन करता है। पत्री सुनाने के पहले या बाद में पुरोहित को गुड़-चावल दिये जाते हैं।

हारगी

मनाली के देवताओं में हारगी पर जाने की परम्परा आम है। हारगी देवयात्रा का एक रूप है। देवप्रजा अर्थात् जितने गांवों में जितने परिवार देवता को मानते हैं, उसे हार कहते हैं। कई देवताओं की हार अर्थात् प्रजा क्षेत्र एक गांव तक ही सीमित होती है, जबकि कई देवता पांच-सात गांवों के अधिपति होते हैं। हार में रहने वाले लोगों को हारियान कहते हैं। प्रत्येक हार में रहने वाला परिवार देवता को जब देय कर चुकाता है या सामूहिक कार्य के लिए

निर्धारित किया गया धन चुकाता है, तभी वह हारियान कहलाने का हकदार होता है। जिन देवताओं की हार अधिक गांवों की होती है, वे साल में एक बार अपनी हार में भ्रमण पर निकलते हैं जिसे हारगी कहते हैं। कई बार देवता किसी मेले -उत्सव के अतिरिक्त अन्य दिनों में अपने मित्र या बन्धु देवता के गांव में मेहमान के तौर पर जाते हैं, इसे भी हारगी कहते हैं। मनु ऋषि, गौतम ऋषि, शांडिल ऋषि, सियाली महादेव आदि की आपस में हारगी है। ये समय-समय पर एक दूसरे के मेहमान जाते हैं या ढूंगरी जाच तथा फागली आदि पर्वों पर इकट्ठे होते हैं तथा आपस में विचार-विमर्श करते हैं। एक-दूसरे की समस्याओं का निराकरण करने की कोशिश करते हैं।

ढूंगरी जाच

हिडिम्बा मंदिर में प्रमुख मेला ज्येष्ठ मास की संक्रांति को हिडिम्बा देवी के जन्मोत्सव के रूप में प्रथम ज्येष्ठ से तीन ज्येष्ठ तक मनाया जाता है। इस मेले के अवसर पर हिडिम्बा देवी का रथ मनाली गांव से ढूंगरी लाया जाता है। इसके अतिरिक्त इस मेले में विसिष्ठ ऋषि, गौतम ऋषि, सियाली महादेव, शांडिल ऋषि, नसोगी के शौंकू तथा सजला के विष्णु आदि देवता के रथ भी सम्मिलित होते हैं।

भादरसिंह री जाच

दूसरा मेला यहां मंदिर के निर्माणकर्ता कुल्लू राजा बहादुर सिंह की स्मृति में प्रथम श्रावण को *भादर सिंह री जाच* नाम से एक दिन के लिए मनाई जाती है। इसमें भी हिडिम्बा के साथ नसोगी का शौंकू देवता तथा सियाली महादेव सम्मिलित होते हैं।

देव रात्रि

फाल्गुन मास में महा-शिवरात्रि से एक दिन पहले यहां पर देव रात्रि मनाई जाती है। इसमें रात्रि जागरण के अतिरिक्त भजन-कीर्तन तथा प्राचीन परम्परा के अनुसार नाच-गाने का कार्यक्रम होता है।

नवरात्र उत्सव

चैत्रमास के वासंतिक तथा आश्विन के शारद नवरात्रों में षष्ठी से अष्टमी तक मंदिर में जपयज्ञ एवं हवन का आयोजन होता है। इस आयोजन को अष्टमी का पूजन कहते हैं। शरद नवरात्रों में अष्टमी के दिन मनाली से देवी हिडिम्बा का रथ ढूंगरी लाया जाता है। वहीं से नवमी के दिन देवी कुल्लू दशहरा को आती है। हिडिम्बा के मंदिर में वासंतिक नवरात्र की अष्टमी को

अष्टांग बलि दी जाती है और कुल्लू राजा को निमंत्रण दिया जाता है। देवी के विशिष्ट उत्सवों में राजपरिवार के सदस्य की उपस्थिति अनिवार्य होती है। यह परम्परा आज भी यथावत् चली आ रही है। देवी का शूरू की भगवती शबरी के साथ गहरा रिश्ता है। यह जब भी शूरु में देवी शबरी के मंदिर में जाती है तो वहां अपनी घघरी से मंदिर परिसर को साफ करने का उपक्रम करती है।

कुल्लू दषहरे में देवी हिडिम्बा की भूमिका

देवी हिडिम्बा की कृपा से राजपाट मिलने के कारण कुल्लू राजपरिवार इसे दादी मानता है तथा ज्येष्ठ पुत्र के पैदा होने पर देवी के मंदिर में पांच बकरों की बलि देता है और उसके कुशल क्षेम की कामना के साथ आशीर्वाद मांगता है।

देवी हिडिम्बा सदैव कुल्लू के राजाओं की मदद करती रही है। राजपाट के साथ-साथ कुल्लू के राजाओं के राज्य विस्तार में भी देवी हिडिम्बा का आशीर्वाद रहा है। आऊटर सिराज तथा रामपुर पर विजय अभियान में राजा मानसिंह द्वारा प्रयुक्त तलवार आज भी हिड़ब गांव में स्थापित है। कड़ाहिल में गोशाल के पंडित अभी भी इस तलवार को हिडिम्बा देवी मानकर इसकी पूजा करते हैं। पुराने समय में कुल्लू वालों को मण्डी की गुम्मा खानों से नमक लाना पड़ता था। लोग कई-कई दिनों की पैदल यात्रा के बाद गुम्मा से पीठ पर ढोकर नमक लाते थे। कहते हैं कि एक बार कुल्लू राजा सहित लोगों को गुम्मा की नमक की खान से नमक लाने के लिए रोका गया तो देवी एक व्यक्ति के शरीर में प्रकट होकर बोली थी- *वधाणियां! गुम्मा त्राकड़ा लाऊ मैं, सोन्हा बै सूने री भेड़ खडी केरी ती मैं* अर्थात् विधान करने वाले राजा! गुम्मा नामक स्थान पर मैंने तराजू लगाया था, शाम को सोने की भेड़ खड़ी की थी।

किसी समय कुल्लू के राज्य का विस्तार लाहुल तथा चम्बा के महला गांव तक फैल गया था, इसीलिए कुल्लू के राजाओं ने लाहौल की पट्टन घाटी तथा चम्बा के महला गांव में हिडिम्बा देवी का मंदिर स्थापित किया था। चम्बा में प्रचलित लोकश्रुति अनुसार एक बार रावी क्षेत्र में असुरों ने अपने अत्याचारों से आतंक मचाया। लोगों में त्राहि-त्राहि मच गई। उन राक्षसों ने गांव के गांव उजाड़ने प्रारम्भ किए। जब मानव जाति का अन्त होने लगा तो उन्होंने मनाली की देवी हिडिम्बा की स्तुति की और उससे उनकी रक्षा करने की प्रार्थना की। हिडिम्बा ने उनकी प्रार्थना सुनी और उन्हें रक्षा का वचन दिया। देवी ने लोगों

से कहा कि वह महले की जात्र में आएगी, वहां उन्हें उसे पहचानना होगा। जब गांव में मेला शुरू हुआ और नाच होने लगा तो अन्य नर्तकों के साथ एक ऐसी स्त्री भी नाचने लगी जिसके पैर ज़मीन पर नहीं लग रहे थे। लोगों ने उसे देखा और समझ गए कि यही देवी हिडिम्बा है। वे उसके पांव पड़ गए और उन्होंने उससे संकट दूर करने का आग्रह किया। बाद में देवी ने कुल्लू राजा के द्वारा एक-एक करके सभी दैत्यों का वध करवा कर लोगों को उनके अत्याचारों से उबारा था।

कुल्लू दशहरे में देवी हिडिम्बा की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। दशमी वाले दिन जब देवी रामशिला पहुंचती है तब राजमहल से उसकी अगवानी के लिए छड़ी भेजी जाती है, जो आदर पूर्वक देवी को राजमहल पहुंचाती है। यहां पहुंचकर देवी राजमहल में विराजमान होती है। जब देवी महल में पहुंचती है तो राजपरिवार के सभी सदस्य महल से बाहर जाकर छुप जाते हैं। उनका महल से बाहर निकलना देवी को राजपाट सौंपने का सूचक होता है। इस दौरान राजा भगवान् रामचन्द्र के मंदिर में पूजा अर्चना करते हैं। पूजा करने के बाद पूरा परिवार ठारह करडू की बन्द परौल़ के पीछे खड़ा हो जाता है। तब देवी का रथ तथा गूर महल से बाहर आते हैं और गूर ठारह करडू की परौल़ के पास जाकर आवाज़ लगाता है-- बाहर आ जाओ। तब परिवार के सभी सदस्य देवी के दर्शन करते हैं। उस समय देवी के रथ के ऊपर मेमने की बलि भी दी जाती है। तत्पश्चात् राजा को महल सौंपकर अपना आशीर्वाद व दशहरे की शुभकामनाएं दे कर देवी सीधे ढालपुर अपने ठहरने के स्थान पर चली जाती है।

देवी हिडिम्बा के बिना दशहरे की रथयात्रा प्रारम्भ नहीं होती है। दशहरे के प्रथम दिन ही ढालपुर के रथ मैदान में दोपहर तीन बजे के लगभग कुल्लू जनपद के सभी देवी-देवता भगवान् रघुनाथ के सजे-धजे बड़े रथ के चारों ओर खड़े हो जाते हैं। ज्यों ही देवी हिडिम्बा का रथ वहां पहुंचता है, त्यों ही रथ यात्रा जय श्रीराम के उद्घोष के साथ प्रारम्भ हो जाती है। दशहरे में जब राजा की जलेब अर्थात् शोभायात्रा निकलती है तो उस के दौरान जब राजा की पालकी पुलिस अधीक्षक के कार्यालय के पास ठहरी देवी के स्थान से होकर गुज़रती है तो देवी का रथ उठाया जाता है। रथ व पालकी का मिलन होता है और देवी राजा को अपना आशीष प्रदान करती है।

मुहल्ले वाले दिन ज़िला भर से आये सभी देवताओं की भगवान रघुनाथ

के दरबार में हाज़री लगती है। उस समय भी भगवान् रघुनाथ की छड़ी देवी को निमंत्रण देने जाती है और बुलाकर ले आती है। सबसे पहले देवी को नज़राना दिया जाता है। उसके बाद अन्य देवताओं की उपस्थिति दर्ज़ करके उन्हें नज़राना दिया जाता है। लंका दहन के दिन भैंस, सूअर, केकड़े, मुर्गे और मछली की जो बलि दी जाती है वे सब देवी हिडिम्बा को समर्पित होती हैं। बलि लेने के बाद देवी सीधे मनाली की ओर कूच करती है। रात को कटराई (जोंगा) में ठहरती है और अगले दिन मनाली पहुंच जाती है।

फागली

हिमाचल प्रदेश के बहुत से क्षेत्रों में फागली का उत्सव मनाया जाता है। लाहुल और किन्नौर में चन्द्र कैलेण्डर के आधार पर नये वर्ष के आगमन पर फागली मनाई जाती है, परन्तु कुल्लू के मनाली–गोशाल की फागली, जो सभी झेचों का प्रतिनिधित्व करती है, माघ मास की संक्रांति को मनु मंदिर में शुरू होती है। इसके बाद ही कुल्लू में मलाणा सहित सभी जमलू देवताओं के मंदिरों में फागली मनाने का शुभारम्भ हो जाता है। यह उत्सव टुण्डी राक्षस की पत्नी टिम्बर शाचिका के सम्मान के रूप में मनाया जाता है।

जन विश्वास है कि उझी घाटी में एक समय टुण्डी राक्षस का आतंक था। वहां के देवताओं और लोगों ने उसके आतंक से छुटकारा पाने के कई यत्न किए परन्तु वे कामयाब नहीं हो पाए। इसी प्रयास में एक बार देवताओं ने टुण्डी को चौसर खेलने के लिए बुलाया और कहा कि अगर वह हार गया तो उसे यह घाटी छोड़कर कहीं अन्यत्र जाना होगा। टुण्डी ने उनकी बात स्वीकार की। चौसर में टुण्डी जीत गया। देवताओं की यह चाल नाकाम रही। तब उन्होंने ने एक सुन्दर युवती का निर्माण किया, जिसका नाम टिम्बर शाचिका रखा गया। जब टुण्डी ने उस युवती को देखा तो वह उसके सौंदर्य पर मोहित हो गया। उसने देवताओं के सामने उस युवती से विवाह करने की इच्छा ज़ाहिर की। देवता तो यही चाहते थे। उन्होंने कहा कि वे उस युवती का विवाह उससे तभी करवायेंगे अगर वह विवाह करने के बाद हमेशा के लिए उझी घाटी को छोड़कर रोहतांग के उस पार चला जाए। टुण्डी उनकी शर्त को मान गया। उधर जब देवताओं ने युवती से पूछा तो उसने दानव से विवाह करने से इनकार किया। युवती देवताओं की कृति थी अतः वे ही उसके अभिभावक थे। अंततः अभिभावकों के मनाने तथा समाज की भलाई के लिए युवती ने उस दानव के साथ विवाह करना इस शर्त पर स्वीकार किया कि वह

वर्ष में एक बार उनसे मिलने आया करेगी और उस समय उसे पूरा मान-सम्मान देना होगा। शर्त के अनुसार टुण्डी टिम्बर शाचिका के साथ लाहुल चला गया। जब वह पहली बार अपने अभिभावकों से मिलने आई तो उसका पूरा मान-सम्मान किया गया। तब से हर वर्ष उसके आगमन की खुशी में फागली का पर्व मनाने की परम्परा आरम्भ हुई मानी जाती है।

फागली का शुभारम्भ मनाली में मनु ऋषि के मंदिर से और समापन शलीण में शांडिल ऋषि के मंदिर में होता है। कहते हैं कि इन दोनों ऋषियों ने ही टिम्बर शाचिका और टुण्डी राक्षस का विवाह कराने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। मनाली से लगभग दो किलोमीटर उत्तर की तरफ गोशाल गांव में गौतम ऋषि, व्यास ऋषि और कंचन नाग एक ही रथ में पूजित हैं। कहते हैं कि सप्त ऋषियों में एक बार शर्त लगी कि कौन सा ऋषि सबसे अधिक सिद्ध है। इसके लिए तय हुआ कि जो खेतों में अनाज पैदा करेगा, वही सिद्ध माना जाएगा। तब सभी ऋषि अपने-अपने स्थान को चले गए और तपस्या करने लगे। गौतम ऋषि भी तपस्या में लीन हो गए। एक बार गौतम ऋषि ने अपने तप की परीक्षा करनी चाही कि उसके तप में कितना बल है। उसने अपने तप से कद्दू का एक बीज बनाया और उसे राख में डाल दिया। कुछ समय बाद कद्दू का बीज प्रस्फुटित हुआ और बेल के चारों ओर कद्दू ही कद्दू उग आए। अपनी तपस्या में सफल होने के बाद गौतम ऋषि ने अठारह बाग बनाकर उनमें विभिन्न प्रकार के अनाज और सब्ज़ियां उगाईं। इस तरह वह सप्त ऋषियों में सबसे सिद्ध ऋषि बना। इसीलिए मनु को सृष्टि का रचयिता और गौतम को अनाज का प्रवर्तक माना जाता है।

इस सफलता के बाद गौतम ऋषि ने बयालीस दिनों तक लगातार तपस्या करके एक गाय पैदा की। इस स्थान पर गाय उत्पन्न करने के कारण ही इस गांव का नाम गोशाल पड़ा अर्थात् जहां गोशाला हो। जिन 42 दिनों में गौतम ऋषि तप में रहे, उस दौरान कंचन नाग उनकी रखवाली करता रहा। वह इस बात का ख्याल रखता था कि कोई शोर करके उनकी तपस्या को भंग न करे। आजकल भी जब मकर संक्रांति को मनु ऋषि के मंदिर में फागली का शुभारम्भ होता है तो गोशाल में बयालीस दिनों तक कोई भी मेला-त्योहार एवं शोर-शराबा नहीं किया जाता। न ही किसी घर में विवाह-शादी की जाती है और न ही किसी घर में रेडियो और टेलीविज़न आदि चलाया जाता है। खेत में हल नहीं चलाया जाता तथा गाय का गोबर भी नहीं निकाला जाता। माना

जाता है कि देवता गौतम तपस्या में बैठा है।

मकर संक्रांति से पूर्व लोहड़ी को गौतम ऋषि तपस्या में बैठते हैं। मकर संक्रांति को प्रातः सूरज उदय होने के साथ ही देवता के रथ से तीनों देवताओं गौतम, व्यास और कंचन नाग के मोहरे निकालकर एक टोकरी में रख कर भंडार में रखे जाते हैं। यह प्रक्रिया मनाली सहित समस्त कुल्लू में अपनाई जाती है। इस प्रक्रिया को देऊ मढारना, पाटे पड़ना आदि नाम से जाना जाता है। यह इस बात का सूचक होता है कि समस्त देवता मकर संक्रांति को राजा इन्द्र के दरबार में विचार-विमर्श तथा शक्ति अर्जन हेतु चले गए और फाल्गुन या चैत्र की संक्रांति को अपने हारियानों की खुशहाली के लिए नई उर्जा लेकर आयेंगे। इसके बाद मिट्‌टी को साफ कपड़े से छानकर व गूंथ कर उसका पिण्डी के ऊपर आलेपन किया जाता है। उसके बाद मुखौटे और अन्य साज़ो सामान मंदिर से बाहर निकाले जाते हैं। मंदिर का दरवाज़ा बयालीस दिनों तक बन्द रखा जाता है। इसी दिन शाल्ह भी बयालीस दिनों के लिए बन्द की जाती है। शाल्ह उस कमरे को कहते हैं जहां पर देवताओं का सारा सामान रखा रहता है। शाल्ह भण्डार गृह की दूसरी मंज़िल में होती है।

मकर संक्रांति के बयालीस दिनों बाद फागली का मुख्य पर्व मनाया जाता है। यह फाल्गुन मास में बुधवार या रविवार को होता है। प्रथम दिन जागरे में देव स्तुति में भजन गाए जाते हैं। बजंत्री लुहार के घर में इकट्‌ठे होते हैं। इस रात गूर शाल्ह में सोता है। गूर का कहना है कि आधी रात को उसे ऐसी आवाज़ सुनाई देती है, जैसे कोई शाल्ह का दरवाज़ा खटखटा रहा हो। आवाज़ सुनकर वह शाल्ह से बाहर बरामदे में आता है और तीन बार ज़ोर से आवाज़ देता है– 'देवता आया है... देवता आया है... देवता आया है...।' उसकी आवाज़ सुनने पर गांव के सभी लोग लुहार के घर में इकट्‌ठे होते हैं। बजंत्री *ठारह झूण* (देव आवाहन के अठारह प्रकार के ताल) बजाते हैं। झूण बजाने के बाद सभी लोग भण्डार के प्रांगण में इकट्‌ठे होते हैं। यहां भी अठारह झूण बजाई जाती है। यह प्रक्रिया भोर होने तक चलती है।

दिन में उझी क्षेत्र के सभी लोग देव प्रांगण में इकट्‌ठे होते हैं। भंडार से तीनों देवताओं के मोहरे तथा अन्य सामान बाहर निकाला जाता है। पुजारी, भंडारी और गूर उनकी पूजा करते हैं। इसके बाद मोहरे की टोकरी को देवता के मंदिर तक ले जाया जाता है। मंदिर के दरवाज़े से अर्गला हटाकर मोहरे और वाद्ययंत्रों को मंदिर में रखा जाता है। उनकी पूजा होने के बाद मनु ऋषि

का गूर घण्टी तथा धड़छ लेकर आता है। इसके बाद गौतम ऋषि की पिण्डी के बाहर लगाई हुई मिट्टी को हटा कर कांसे की थाली, जो राणा झीणा की मानी जाती है, में रखा जाता है। इन टुकड़ों को देवता के पदाधिकारियों को दिखाया जाता है। वे मिट्टी में कई वस्तुओं को देखते हैं, जो बयालीस दिनों में इसमें स्वतः आती हैं। लोग मिट्टी में मिली इन वस्तुओं से वर्षफल का अनुमान लगाते हैं। मिट्टी में गेहूं के दाने निकलना अच्छी फसल होने, खाने की चीज़ें खराब फसल, सेब का पत्ता अच्छी सेब की फसल, सेब का बीज सेब की कम फसल, चावल के दाने धान की अच्छी फसल, कोयला आग लगने, पत्थर के टुकड़े बाढ़ आने, चमकते पत्थर जवाहरात का अच्छा व्यवसाय, सोने के टुकड़े अमीरी, फूल की पंखुड़ियां सुख-समृद्धि, चूहे के बाल आदमियों की अधिक मौत, महिला के बाल औरतों की अधिक मौत, किसी भेड़ के बाल पशुओं की अधिक मौत, केसर अधिक विवाह-शादी और धार्मिक कार्य तथा लाल धागे की डोरी सुख-समृद्धि का प्रतीक माने जाते हैं।

इस प्रक्रिया के बाद *जौनी कोनी* के रूप में मंदिर के गिर्द करनाहल, भाणे, छंछाला आदि वाद्ययंत्र बजाते हुए परिक्रमा की जाती है। परिक्रमा में गूर भी शामिल होता है। इसके बाद मनु और गौतम ऋषि के गूर लोगों की पूछ का निराकरण करते हैं। गूर द्वारा *देऊ खेल* की जाती है। देऊ खेल देवताओं के हथियारों व निशान जैसे- घण्टी, धड़छ, कटार, शांगल, झारी आदि का नृत्य-प्रदर्शन होता है।

अगले दिन *पारजौनी* अर्थात् विदाई की प्रक्रिया निभाई जाती है। यह टुण्डी राक्षस और टिम्बर शाचिका की विदाई का प्रतीक होती है। उसके बाद मंदिर प्रांगण में आग जलाकर गांव के हर परिवार में से किसी एक द्वारा एक मेढ़ा या बकरा काटा जाता है। उसका मांस गांव के हर परिवार में प्रसाद के तौर पर बांटा जाता है। देवी हिडिम्बा के मंदिर में भी फागली का उत्सव मनाया जाता है। इस उत्सव में कुल्लू राजपरिवार को जौ के जौरे (किसी आयोजन से लगभग पन्द्रह दिन पहले घर के अंधेरे कोने में किसी खुले पात्र में मिट्टी व गोबर बिछा कर बोये गए जौ, जो अंधेरे के कारण पीले रंग के होने पर गुच्छे बनाकर फूल की तरह प्रयोग किए जाते हैं) आशीष के तौर पर भेजे जाते हैं।

पौष की दियाली

उझी क्षेत्र में पौष मास की अमावस्या को दियाली का शुभारम्भ होता है। मनाली सहित सभी गांवों में इस शाम अन्धेरा होते ही दीया जलाया जाता है।

नग्गर की दियाली सबसे प्रसिद्ध है। यहां अमावस्या की शाम जगतीपट पर एक बड़ा सा दीया जलाया जाता है। तब पुजारी बोलता है, *हुई दियालिए हुई, धाउड़ी एज़िया सूई*। इस समय यहां घियाना (अलाव) भी जलाया जाता है। यहां का प्रकाश देखकर आसपास के गांवों में दियाली की शुरुआत हो जाती है। अगले दिन नग्गर व जाणा फाटी के स्त्री-पुरुषों की अलग-अलग टोलियां गांव के घर-घर में जाती हैं। घर वाले आंगन में अखरोट फेंकते हैं, जिन्हें ये टोलियां उठाती हैं। ये टोलियां पराल घास का रस्सा बनाकर आपस में रस्साकस्सी का खेल खेलती हैं। ऐसा ही रस्साकस्सी का खेल जिंदौड़, पारशा, बड़ाग्रां, लरांकेलो आदि गांवों में भी खेला जाता है।

दियाली के सम्बन्ध में जनश्रुति है कि किसी समय नग्गर में बाईया नाम का एक राणा रहता था। किसी बात पर उसकी रानी उससे रूठ गई। उसने राजा से हंसना-बोलना बन्द कर दिया। उसे हंसाने के लिए कई यत्न किए गए परन्तु सफलता नहीं मिली। तब राजा ने अपने राज्य में ढिंढोरा पिटवा दिया कि जो भी रानी को हंसायेगा, उसे उचित इनाम दिया जाएगा। एक दिन उसके एक मंत्री ने रानी के सगे भाई को बुलाया और उसके सिर पर मेढ़े के सींग लगाकर, धान कूटने के मूसल पर बिठा कर दो आदमियों द्वारा पूरे गांव में घुमाया गया। जब उसे राजा के महल में ले गए तो रानी उसे देखकर ज़ोर-ज़ोर से हंसने लगी। रानी को हंसते देखकर राजा ने खुश होकर टोकरे भर-भर कर इनके आगे अखरोट फेंक दिये। तब से यह परम्परा अभी भी चली आ रही है। इसमें जीहरू गीत गाने की परम्परा भी है।

षौयरी और माघ का साजा

आश्विन मास की संक्रांति को उझी में शौयरी साजे के रूप में मनाया जाता है। शौयरी जहां नई फसल आने की खुशियों का संदेशवाहक होता है, वहीं शरद ऋतु के आगमन का सूचक भी है। इस दिन सभी लोग प्रातः उठकर बावड़ी या पवित्र जलस्रोत में स्नान करते हैं, उसके बाद मंदिरों में पूजा करते हैं। बहुत से देवताओं के मंदिरों में जगती पूछ भी होती है। कई स्थान पर देवता को अखरोट व खीरे इत्यादि चढ़ाये जाते हैं। संक्रांति की प्रातः परिवार के सभी सदस्य अपने से बड़ी उम्र व रिश्ते वालों को दूर्वा भेंट करके उनके पैर छू कर आशीर्वाद लेते हैं। इसे *जूब देना* कहते हैं। स्वादिष्ट पकवान बनाकर रिश्तेदारों को खिलाये जाते हैं। विवाहित महिलाएं अपने पति के साथ मायके जाती हैं, वहां मायके वालों को जूब देती हैं। जूब देने के पीछे मान्यता है कि

साल भर सभी बीमारियों से बचकर नई धान की फसल का स्वाद लेने के लिए सकुशल रहे हैं। इसलिए अगले वर्ष के लिए भी बड़ों से आशीर्वाद लेना शुभ समझा जाता है। भोजन करते समय भोजन करने वाले खिलाने वालों को *आगो बी देई* अर्थात् अगले साल भी खिलाना कहते हैं और खिलाने वाला प्रत्युत्तर में *आगो बी खाई* कहता है।

वशिष्ठ मेला

हर साल बैसाख संक्रांति को वशिष्ठ गांव में बिरशू नामक मेले का आयोजन होता है जिसमें आसपास के देवता सजधज कर बाजे-गाजे के साथ गुरु वसिष्ठ को अर्घ्य प्रदान करते हैं।

चचौहली जाच

जगतसुख में हर वर्ष मेला चचौहली के दिन *कोटे री खोली* में प्रबन्धक कमेटी का मनोनयन होता है, जो इस मंदिर में होने वाले देवकार्य तथा हर मेले में देवी के रथ को ले जाने व लाने की व्यवस्था का जिम्मा उठाती है। मेला चचौहली देवी संध्या का प्रमुख मेला माना जाता है। इसमें अनेक गांव से देवी-देवता के पधारने पर देवी मेले की अगवाई करती है। कहा जाता है कि एक बार देवी ने पुजारी खानदान की एक बुढ़िया को स्वप्न में दर्शन देकर बताया कि उसके धान के खेत में एक ऐसा पौधा उगेगा जिसकी सील (बाल) सोने की और नाल चांदी की होगी। कल जाकर वह उसे मेरे मंदिर में चढ़ाये। बुढ़िया ने आदेशानुसार पौधे को उखाड़कर देवी के चरणों में चढ़ाया। तब से लेकर आज तक बीज बोने तथा फसल काटने का दिन निश्चित कर देवी के गूर के द्वारा धान की फसल के कार्य संपादित किए जाते हैं।

विंटर कार्निवाल

पहाड़ों के प्रेमी भारत के प्रथम प्रधानमंत्री स्व. पंडित नेहरू के आग्रह पर सन् 1961 में पंजाब के मुख्यमंत्री सरदार प्रताप सिंह कैरो ने मनाली में पश्चिमी हिमालयन पर्वतारोहण संस्थान की स्थापना की थी जो अब अटल बिहारी वाजपेयी पर्वतारोहण संस्थान के नाम से चल रहा है। उस समय इसके प्रथम निदेशक स्व. हरनाम सिंह थे। उन्होंने ही मनाली के विंटर कार्निवाल का श्रीगणेश किया था।

मनाली के विंटर कार्निवाल का शुभारम्भ सन् 1977 में हुआ, जिसका उद्घाटन हिमाचल के तत्कालीन मुख्यमंत्री यशवन्त सिंह परमार ने किया था। इसमें हरनाम सिंह ने सोलंग की ढलानों में स्की की खेलें आरम्भ कीं, जिसमें

HAWS, ITBP तथा गुलमर्ग स्की स्कूल के प्रशिक्षित खिलाड़ियों ने भाग लिया था। बाद में इसको रंगीन बनाने के लिए मनु रंगशाला में भी सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन होने लगा। दोपहर तक सोलंग की ढलानों में स्की की खेलें होती थीं और दोपहर के बाद मनु रंगशाला मंच पर सांस्कृतिक प्रतियोगितायें करवाई जाती थीं। दुर्भाग्य से सन् 1985 में विंटर कार्निवाल में सांस्कृतिक कार्यक्रम करवाये जाने बन्द हो गए। सन् 1985 से 1989 तक ढूंगरी मेले के उपलक्ष्य में कुछ स्थानीय व्यापारियों ने मनु कला मंच पर तीन दिन का समर फैस्टिवल शुरू किया, परन्तु पर्यटन व्यावसायियों के पीक सीज़न में व्यस्त होने के कारण इसे सफलता नहीं मिल पाई। सन् 1990 में मण्डल आयोग के कारण पूरे देश में आरक्षण का आन्दोलन होने पर यह भी बन्द करना पड़ा। फिर जनवरी 1993 में मनाली के व्यापारी सतपाल की अध्यक्षता में गठित मनु कला केन्द्र के कुछ उत्साही युवकों, जिनमें मास्टर सतीश सूद तथा हेम राज मेहरा का नाम उल्लेखनीय है, ने मुम्बई के मिस्टर मिलन के TRIOS ग्रुप के साथ मिलकर सांस्कृतिक प्रतियोगिताओं को दोबारा शुरू किया, जिसमें देश के विभिन्न भागों से स्कूल, कालेज और सांस्कृतिक संस्थाओं के 15 से 35 वर्ष के युवा कलाकारों ने भाग लेना शुरू किया। बाद में विंटर क्वीन और मि. पर्सनेलिटी का चुनाव होने से इसे राष्ट्रीय स्तर पर ख्याति मिली। इसकी सफलता को देखकर सन् 1999 से सन् 2008 तक इसे राज्य सरकार ने राज्य स्तरीय उत्सव घोषित किया। इसका शुभारम्भ हिडिम्बा देवी के पूजन के साथ होता है। तत्पश्चात् मंदिर से सर्किट हाऊस होते हुए झांकियां इसके आकर्षण को बेहतर बनाती हैं। इसमें देश के विभिन्न स्थानों की झांकियों में विविध संस्कृति के दर्शन होने लगे। सन् 2008 से इसमें एक बार फिर स्की की प्रतियोगितायें आरम्भ हुईं। यह विंटर कार्निवाल का ही कमाल है कि आज कुल्लू के बहुत से नौजवान अन्तर्राष्ट्रीय स्तर तक शीतकालीन खेलों में बेहतर प्रदर्शन कर रहे हैं। सन् 2009 में इसे राष्ट्रस्तरीय उत्सव घोषित किया। वर्ष 2013 में स्थानीय महिलाओं के फैशन शो ने उझी क्षेत्र के महिला परिधानों को पुनर्जीवित करने का प्रशंसनीय काम किया।

पंचम अध्याय

सामाजिक व्यवस्था

इतिहासकारों ने कुल्लू घाटी के लोगों को कोल, कनैत, खश, किरात, गन्धर्व आदि माना है। डॉ एम.एस. रन्धावा ने कुल्लू राजा कोलित्र अर्थात् कोल राजा शम्बर को सौ मज़बूत दुर्गों का मालिक माना है। उनके अनुसार कुल्लू के लोग कोल थे। ये लोग अछूत नहीं माने जाते थे। ये तो कुल्लू में रहने के कारण कोले कहलाते थे। लाल चन्द प्रार्थी ने कुलूत देश की कहानी में लिखा है कि कोल लोग स्थायी रूप से काश्तकार न थे, बल्कि जगह-जगह खुले जंगलों को साफ करके अन्न पैदा करने के अभ्यासी थे। इसका प्रमाण आज भी मनाली के आसपास के जंगलों में देखा जा सकता है, जहां पर पुराने खेतों के अवशेष मौजूद हैं। इतिहासकारों का मानना है कि यहां के लोग भूमि को चक बन्दी और खासकर धान लगाना और उसके लिए ज़मीन को उचित ढंग से तैयार करना अच्छी तरह जानते थे, वर्तमान लोग उन्हीं पूर्वजों का अनुसरण कर रहे हैं। इसी तरह बीस तक की गिनती, दिनों और महीनों के नाम पर बच्चों के नाम रखना और मरने पर बकरा काट कर शुद्धि करना भी कोल सभ्यता की ही देन है। भारवि ने अपने प्रसिद्ध नाटक 'किरातार्जुनीयम्' में जिन घटनाओं व स्थानों का वर्णन किया है, वे वर्तमान मनाली के पास इन्द्रकील पर्वत के आसपास से मेल खाते हैं। यहां पर भगवान शिव ने अर्जुन को पाशुपत अस्त्र प्रदान किया था।

कोलों और किरातों के बाद यहां खश लोगों का प्रभुत्व भी रहा है। जनरल कनिंघम ने आर्क्योलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया में कहा है कि कश्मीर से लेकर आसाम की पहाड़ियों तक खश लोग रहते थे। इसी तरह कुल्लू मनाली के लोग नाचने-गाने के शौकीन रहे हैं, जो गन्धर्व होने का संकेत देते हैं। आरम्भ में यहां केवल राजपूत, लुहार और ब्राह्मण वर्ग के लोग ही रहते थे। आजकल मनाली क्षेत्र में ब्राह्मण, राजपूत, सूद, महाजन, वैरागी, कोली, लुहार, जुलाहे, तेली, तरखान, कुम्हार, ठठियार, सुनार, स्वांगले, बौद्ध, तिब्बती आदि सभी वर्ग के लोग रहते हैं।

पारिवारिक स्थिति

मनाली क्षेत्र में वर्ष 2000 से पहले तक संयुक्त परिवार ही हुआ करते थे। इसके बाद धीरे-धीरे परिवार एकल होने लगे। प्रायः पिता के जीवित होते कोई भी भाई अलग नहीं रहता था। उसके मरने के बाद ही परिवारों में बंटवारा होता था। हां, कुछ बुज़ुर्ग अपने सामने ही बेटों में अपनी जायदाद का बंटवारा करते थे ताकि उनके मरने के बाद बेटों में जायदाद से सम्बन्धित कोई विवाद न हो। बंटवारा करते वक्त बुज़ुर्ग अपने लिए *भड़ोगल़* (जीवन निर्वाह के लिए रखा गया अपना हिस्सा) के तौर पर एक-दो खेत रख लेते हैं और बाकी सारी ज़मीन बेटों में बांट देते हैं। वे स्वयं जिस बेटे के साथ रहते हैं, उसे ही भड़ोगल़ के रूप में रखी ज़मीन को कमाने का हक होता है। बाप के मरने के बाद यदि उसकी पत्नी जीवित हो, तो भड़ोगल वाला खेत उसे मिलता है। उसके मरने के बाद भड़ोगल़ सभी बेटों में बराबर बांटी जाती है। जिन मां–बाप ने भड़ोगल नहीं रखी होती है, वे भड़ोगल़ के बदले में हर महीने सभी बेटों से बराबर अनाज या रुपये लेते हैं।

माता-पिता की मृत्यु पर किए जाने वाले कर्मकाण्डों को सभी भाई बंटवारा होने के बाद इकट्ठे मिलकर निभाते हैं। लेकिन सभी भाइयों का समाज के साथ व्यवहार बंटवारा होने पर एक वर्ष के बाद अलग-अलग है। जो बेटा बाप के साथ रहता है उसका व्यवहार बाप के नाम से ही चलता है।

जुआर प्रथा

हमारे प्राचीनतम ग्रन्थ वेदों में आवाह्न किया गया है :–

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसी जानताम् ।
देवा भागं यथापूर्वे संजानाना उपासते।।

जिस प्रकार देव शक्ति सम्पन्न हमारे पूर्वज मिलजुल कर विचार करते हुए अपने-अपने कर्म को करते आए हैं, उसी प्रकार सब मिलकर चलें, मिलजुल कर बातचीत करें और मिलजुल कर विचार करके परस्पर सद्भाव का व्यवहार करें। इस प्रकार भारतीय संस्कृति ने आदिकाल से मेल-मिलाप के साथ रहने और सबकी भलाई के लिए काम करने की वकालत की है तथा वेदों ने सर्वहित के उद्देश्य से मिलकर रहने और काम करने का उपदेश दिया है। *बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय* भारतीय परम्पराओं की धुरी है। एक साथ मिलकर चलने और एक दूसरे के सुख-दुख में हाथ बंटाने की परम्परा मनाली क्षेत्र में बखूबी प्रचलित है। लोगों ने पुराने समय से ही सहकार की भावना को

अंगीकार किया है। वे एक-दूसरे के बड़े कामों को मिलजुल कर निपटाते हैं। चाहे खेत का बड़ा काम करना हो, मकान बनाना हो, जंगल से इमारती लकड़ी लानी हो, विवाह शादी करनी हो, धान की रोपाई करनी हो, इन सब में गांव वालों की अहम भूमिका होती है। शादी-गमी में सामूहिक भोज देने से पहले लकड़ी काटने के लिए जुआरी (इकटठे् मिलकर काम करना) के रूप में सभी गांव वाले एकत्र होते हैं। महिलायें आटा, दाल, चावल बीनने तथा घर की सफाई करने में मदद करती हैं। विवाह आदि में तो गांव की महिलायें मेहमानों को चाय पिलाने से लेकर बर्तन धोने तक का सारा काम निपटाती हैं।

उझी क्षेत्र में कुछ वर्ष पहले तक धान के क्यार बहुतायत में थे। उस समय सभी गांव वाले मिल करके सभी के खेतों में बारी-बारी बाजे-गाजे के साथ लोकगीत गाते हुए धान की रोपाई करते थे। पुरुष खेत को समतल व नरम करते थे, जबकि महिलायें धान रोपाई का काम। शाम को खाने-पीने का दौर चलता था। इस तरह सामूहिक रूप से जुआरी देने से बड़े-बड़े काम भी आसान हो जाते हैं और इससे मेल-मिलाप भी बढ़ता है।

संस्कार

लोक प्रचलित संस्कार लोकजीवन के महत्त्वपूर्ण अंग होते हैं। जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त सम्पूर्ण जीवन को संस्कारों में बांध दिया जाता है। ये संस्कार प्रत्येक व्यक्ति के पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन को नियमित रखने में बहुत सहायक होते हैं।

जन्म संस्कार

आजकल प्रसव प्रायः अस्पताल में करवाया जाने लगा है। कुछ लोग अभी भी घरों में ही प्रसव करवाते हैं। पुराने समय में उझी क्षेत्र में बच्चे का जन्म प्रायः खुड्ड (गोशाला) में किया जाता था। माना जाता था कि बच्चा जब पैदा होता है तो खुड्ड के धरातल में होने के कारण इसका पहला स्पर्श भूमि से हो जाता है। इससे वह हमेशा अपनी धरती से जुड़ा रहता है। अतः मनाली क्षेत्र में लोग बच्चे का जन्म घर की सबसे निचली मंज़िल खुड्ड में करवाते थे। प्रसव पीड़ा आरम्भ होते ही महिला को ऊपरी मंज़िल से खुड्ड में ले जाया जाता था। जहां एक तरफ गाय बैल आदि पशु बांधे जाते थे और दूसरी ओर प्रसूता का बिस्तर लगाया जाता था। गांव की सबसे अनुभवी दाई को बुला कर उससे प्रसव करवाया जाता था। बच्चा होने के बाद वह खुड्ड के दरवाज़े से बाहर आकर घर वालों को उसके जन्मने की सूचना देती थी। यदि बेटा हुआ

हो तो वह उसके बाप व दादा को दूब भेंट करती थी और बदले में वे उसे अपनी हैसियत के अनुसार नेग देते थे।

शुद्धि के बाद प्रसूता को खुड्ड से दूसरी मंज़िल में लाया जाता था। वहां सर्दी हो या गर्मी, आग के अंगीठे के पास उसका बिस्तर लगाया जाता था ताकि उसे व बच्चे को ठण्ड न लगे। जच्चा को घी-बाड़ी खिलाने का रिवाज़ है। माना जाता है कि घी-बाड़ी जल्दी हज़म हो जाती है और सर्दी से भी बचाव करती है।

बेटी होने पर सातवें या नौवें दिन और बेटा होने पर ग्यारहवें या तेरहवें दिन सूर्यावलोकन संस्कार किया जाता है। इस रस्म को *कुणी न उठणा* भी कहते हैं। इससे पहले परिवार का कोई भी व्यक्ति किसी देवस्थल तथा दूसरे कुल वालों के घर नहीं जाता है। इसे जूठ माना जाता है, जिससे उनका कुल देवता नाराज़ होता है। इसी प्रकार इस रस्म से पूर्व अन्य खानदान का व्यक्ति भी प्रसव वाले घर में नहीं जाता। उस घर को *कोरड़ा* माना जाता है। इस परिवार के किसी व्यक्ति से छूना भी मना होता है।

सूर्यावलोकन से पूर्व गोबर, गोमूत्र तथा गंगाजल से घर की सफाई व लिपाई की जाती है। प्रसूता के वस्त्र सहित घर के समूचे कपड़े धोये जाते हैं। पूरे घर में पंचगव्य छिड़काया जाता है। कुल पुरोहित द्वारा मन्त्रोच्चारण के साथ बच्चे को कमरे से बाहर लाकर उसे सूरज के दर्शन करवाये जाते हैं। तत्पश्चात् जौ जला कर उसका धुआं जच्चा-बच्चा और परिवार वालों को छुहा कर घर की शुद्धि की जाती है। इस दिन खानदान, गांव वालों और सगे सम्बन्धियों को भोजन भी करवाया जाता है।

सूर्यावलोकन के दिन ही कुल पुरोहित बच्चे की ग्रह दशा के अनुसार उसके नाम का पहला अक्षर सुझाता है। बच्चा पैदा होने के बाद लगभग एक साल तक नज़दीकी रिश्तेदार महिलायें जच्चा से मिलने आती हैं। बच्चे की नानी, मामी, बुआ, मासी इत्यादि बच्चे को चांदी के कंगन और कपड़े तथा जच्चा के लिए घी और आटा-चावल लेकर आती हैं।

नामकरण संस्कार

तीसरे महीने की संक्रांति को नामकरण संस्कार किया जाता है। प्रायः पुरोहित द्वारा सुझाये प्रथम अक्षर के आधार पर नाम रखा जाता है और इसके बाद बच्चे का वही नाम प्रचलित हो जाता है। जो लोग चूड़ाकरण संस्कार नहीं करना चाहते वे इसी दिन बच्चे के बालों में कैंची लगाते हैं।

चूड़ाकरण संस्कार

चूड़ाकरण संस्कार को *जड़ोलण* भी कहते हैं। कई बार नामकरण के दिन बच्चे के बालों में कैंची नहीं लगाई जाती या बच्चे के घर वाले उसका चूड़ाकरण संस्कार करना चाहते हैं, तो उस स्थिति में पहले, तीसरे या पांचवें साल बच्चे के बाल काटने की रस्म कुल देवता के मंदिर में जाकर पूरी की जाती है। इसे *जौटू खोलणा* कहते हैं। इस अवसर पर मामे की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। वही बच्चे के बाल काटता है। उसके बाद घर आकर गांव वालों एवं सगे सम्बन्धियों को भोज खिलाया जाता है। कई बार बकरा काट कर खुशियां मनाई जाती हैं।

विवाह संस्कार

पुराने समय में व्यास घाटी के ऊपरी क्षेत्रों में गंधर्व विवाह ही प्रचलित था। लड़का-लड़की राज़ी तो क्या करेगा काज़ी की तर्ज़ पर विवाह योग्य युवा अपनी मर्ज़ी से विवाह करते थे। किसी मेले में दोनों की नज़रें चार हुईं और नज़ारों से ही इशारा किया और दोनों किसी दोस्त के घर छुप गये या फिर मंदिर में अपने यार-दोस्तों के साथ जाकर विवाह कर लिया। इस क्षेत्र में महाभारत काल की परम्परायें अभी भी प्रचलित हैं, जिसमें गंधर्व विवाह को बुरा नहीं माना जाता। परन्तु जैसे-जैसे मैदानों की हवा ने इधर का रुख किया, हालात ने करवट बदल ली और देखा-देखी शास्त्र विधि से विवाह होने लगे।

शास्त्र विधि के विवाह में सबसे पहले किसी रिश्तेदार की मध्यस्थता होनी ज़रूरी होती है। रिश्तेदार या दोस्त ने कोई लड़की देखी, लड़के वालों से बात की और उनकी सहमति हो गई तो मध्यस्थ द्वारा ही लड़की वालों से बात की जाती है। यदि उनकी सहमति हो तो कुल पुरोहित दोनों के नाम या कुंडली के आधार पर उनके गुण-दोष देखता है। अगर गुण ठीक हों तो फिर देवता से पूछा जाता है। देवता ने भी अपनी सहमति दे दी तो उसके बाद वही मध्यस्थ दोनों के अभिभावकों को एक स्थान पर, प्रायः लड़की के घर मिलाता है। प्रथम भेंट में बातचीत चलाई जाती है। इस मुलाकात में कभी भी बात पक्की नहीं होती। प्रायः लड़की वाले कहते हैं कि उन्हें कुल पुरोहित से मिलान करवाना है, देवता से आज्ञा लेनी है और सगे रिश्तेदारों से भी सलाह मशविरा करना है। अतः मध्यस्थ के माध्यम से उन्हें संदेश देने की बात कही जाती है। इस दौरान लड़की वाले लड़के तथा उसके परिवार की पूरी छानबीन करते हैं। देवता तथा पुरोहित से पूछ कर उनकी सहमति मिलने के बाद उसी मध्यस्थ

के माध्यम से लड़के वालों को एक निश्चित तिथि को बुलाया जाता है। लड़की वालों का निमन्त्रण लगभग उनकी सहमति मानी जाती है। उस भेंट में दोनों परिवारों में बात पक्की हो जाती है। सूर-चाकटी (स्थानीय नशीले पेय) पिलाने से बात पक्की होने की पुष्टि होने के बाद विवाह का महीना तय किया जाता है और फिर अगली भेंट में दोनों के पुरोहित साथ बिठाये जाते हैं और शादी के लिए दो-तीन दिन निकाले जाते हैं। तत्पश्चात् देवता के मंदिर में जाकर उनमें से एक दिन निर्धारित किया जाता है। इस क्षेत्र में दहेज प्रथा नहीं है। परन्तु लड़की वाले लड़के वालों से इसका ज़िक्र अवश्य करते हैं कि वे दुलहिन को कितने तोला सोना या चांदी के गहने देंगे। जबकि लड़के वाले लड़की वालों से किसी भी किस्म की मांग नहीं करते हैं। यह अलग बात है कि लड़की वाले अपनी हैसियत से बेटी को रसोई से लेकर सोने-पहनने तक के बर्तन, कपड़े, फर्नीचर आदि अवश्य देते हैं। लड़की के मां-बाप जो भी दाज-दान देते हैं, उस पर वर पक्ष में लड़की के अलावा किसी का हक नहीं होता और न ही वर पक्ष के अन्य परिवार वाले उस पर हक जमाते हैं।

निश्चित तिथि को विवाह आरम्भ हो जाता है। पहले तेल डालने की रस्म निभाई जाती है, उसके बाद दूल्हे को नहला व सजाकर बारात दुलहिन के घर रवाना होती है। कुछ वर्ष पूर्व तक एक रात बारात वहीं लड़की वालों के घर ठहरती थी और अगले दिन सभी रस्में निपटा कर वापस लौटती थी, परन्तु आजकल बारात उसी दिन लौट आती है। अगले दिन धाम दी जाती है। मनाली क्षेत्र में लोगों की आर्थिक स्थिति अच्छी होने के कारण अब कई-कई बकरे काट कर धाम में खिलाये जाते हैं।

यहां पर विधवा द्वारा पुनर्विवाह करने को बुरा नहीं माना जाता। यह अलग बात है कि इसमें धूम-धड़ाका नहीं होता। विवाह चुपचाप ही मंदिर में या गंधर्व रूप में किया जाता है। इसे *पौटू पाणा* कहते हैं। हां, यदि कोई विवाहिता पति को छोड़ कर किसी दूसरे से विवाह करती है तो दूसरा पति पहले वाले को रांध (पत्नी पर हक छोड़ने के लिए दिया जाने वाला हरजाना) देता है। इस क्षेत्र में बहुपत्नी प्रथा छिटपुट रूप में रही है। राणाओं ठाकुरों की तो कई-कई पत्नियां हुआ करती थीं, परन्तु अब यह प्रथा समाप्त हो गई है। बहुपति प्रथा यहां प्रचलित नहीं रही है।

अगर लड़का किसी की लड़की को उसके घर वालों की इच्छा के बिना भगा कर ले जाता है तो ऐसी स्थिति में लड़के के मां-बाप या अभिभावक को

लड़की के घर वालों को मनाने जाना पड़ता है। आरम्भ में ना-नुकर करने के बाद लड़की वाले मान जाते हैं और उस विवाह को स्वीकृति प्रदान करके दामाद और बेटी को भोजन पर बुला लेते हैं।

मृत्यु संस्कार

जब किसी का देहान्त हो जाता है तो उसे तुरन्त खाट पर से उतारकर भूमि पर लेटाया जाता है और शंख बजाकर उसके मरने की घोषणा की जाती है। उसके बाद गांव तथा सगे सम्बन्धियों को सूचित किया जाता है। कुछ क्षेत्रों में ऊंचे स्थान से लंबी आवाज़ लगाकर रिश्तेदारों को सूचना दी जाती है। जिसको आवाज़ लगाई जाती है, उधर से *होई* (हां) की आवाज़ आने पर मृतक और उसके खानदान का नाम लेकर कहा जाता है कि अमुक व्यक्ति नहीं रहा। इससे सभी गांव वालों को पता चल जाता है कि कौन व्यक्ति मर गया है। वे तत्काल सभी काम छोड़ कर मृतक के गांव की तरफ चल पड़ते हैं। मृतक के गांव वालों में से कुछ लकड़ी काटने जाते हैं और कुछ वहां की व्यवस्था सम्भालते हैं। वे अरथी तैयार करते हैं और मृतक को नहलाकर उसे सफेद कपड़े या दोहडू में लपेटकर अरथी पर लिटाकर अरथी को रंगबिरंगे कपड़ों जिसे 'फूड़' कहते हैं, से सजाते हैं।

रिश्तेदारों के आने के पश्चात् अरथी को ढोल, नगाड़े, शहनाई की शोक ध्वनि पर श्मशान ले जाया जाता है।

मृतक का क्रिया कर्म प्रायः बेटा करता है। यदि बेटा न हो तो भाई और भाई भी न हो तो भतीजा आदि इस कर्म को निपटाते हैं।

श्मशान में जलाने की प्रक्रिया को *दारी देना* कहते हैं और जो लोग दाह संस्कार में शामिल होते हैं, वे कपालक्रिया से पहले वहां से नहीं लौटते इस के बाद वे चन्दन के साथ अन्य सूखी लकड़ी चिता पर डालकर मृतक को श्रद्धा सुमन अर्पित करते हैं। इस क्रिया को *धर्म लकड़ी डालना* कहते हैं। उसके बाद वहां पर केवल तीन-चार व्यक्ति पूरा शरीर जलने तक ठहरते हैं इन्हें *नरजाल* कहा जाता है। ये मृतक के खानदान वाले नहीं होते। ये गांव वालों में से रखे होते हैं। शव के पूरी तरह जल जाने के बाद वे मृतक की अस्थियां इकट्ठी करके एक थैली में भर कर घर लाते हैं। अस्थियों को हरिद्वार ले जाकर गंगा में बहाया जाता है।

घर में *आले* (ऊनी) धागे से डोरी बना कर नौ दिन तक दीया जलाया जाता है। दीये के पास कुल्हाड़ी या कोई अन्य लोहे का उपकरण रखा जाता

है। गांव वाले नौ दिन तक दीये का पहरा देते हैं, इसे *दीया पौहरना* कहते हैं। दसवें दिन उसे ऐसे स्थान पर छोड़ा जाता है जहां कोई आता-जाता न हो। कुछ क्षेत्र में यह नदी में भी प्रवाहित किया जाता है। ग्यारहवें दिन क्रिया कर्म किया जाता है। इसमें चारज अर्थात् महापंडित को बुलाकर उससे कर्मकाण्ड करवाया जाता है। इस क्रिया को *गति देना* कहा जाता है। तेरहवें दिन पुरोहित द्वारा जौ जलाकर शुद्धि की जाती है। इस अवसर पर हींग वाली रोटी खिलाई जाती है और गांव वालों तथा रिश्तेदारों को खाना खिलाया जाता है।

मरने के एक मास के बाद माहिकी जिसमें किसी गरीब को खाना खिलाया जाता है फिर एक वर्ष के बाद वार्षिकी और चार वर्ष के बाद चतुर्वार्षिकी तथा उसके बाद प्रतिवर्ष श्राद्ध किए जाते हैं, जिसमें पुरोहित को जिमाया जाता है। माना जाता है कि इससे मृतक की आत्मा तृप्त हो जाती है।

पहले मृतक की याद में ओड़ी रखने का रिवाज़ था। अब भी कहीं-कहीं है। इसमें किसी ऊंचे स्थान पर निशानी के तौर पर एक लम्बा सा पत्थर ज़मीन में गाड़ा जाता है। यह उसकी ओड़ी कहलाती है। पुराने समय में राजाओं, राणाओं, ठाकुरों के मरने पर उनकी ओड़ियां अर्थात् बरसेले स्थापित करने का रिवाज़ था। उझी-नग्गर में आज भी राजाओं की ओड़ियां हैं। अलेऊ में झीणा राणा के कुल के सदस्यों की ओड़ियां आज भी छोटे से मैदान में देखी जा सकती हैं। इसी तरह ऊंचे पहाड़ों के दर्रों पर ओड़ियां स्थापित की जाती हैं। ये गाड़े हुए पत्थर कोल संस्कृति की ही देन हैं।

गृह निर्माण

व्यास घाटी में देवदार, रई, तोस व कायल के जंगल प्रचुर मात्रा में होने के कारण यहां पहाड़ी शैली के लकड़ी व पत्थर के बने मकान हैं। घर प्रायः ढाई मंज़िला होते हैं। नीचे की मंज़िल में पशु बांधे जाते हैं, जिसे खुड़्ड कहा जाता है। बीच की मंज़िल में परिवार के सदस्य रहते हैं। सबसे ऊपर की आधी मंजिल को *टाला* कहा जाता है। इसमें रसोई बनाई जाती है। कुछ पुराने मकान कोट शैली में भी बने हैं। इन मकानों में धरातल मंज़िल से दूसरी मंज़िल को जाने के लिए अन्दर-अन्दर ही सीढ़ी बनी होती है। दूसरी मंजिल में अनाज आदि रखने के लिए कोठार या दारठे रखे रहते हैं। इस मंजिल को *खटार* भी कहा जाता है। तीसरी मंज़िल में अपने रहने का कमरा तथा छत से नीचे चौथी या आधी मंज़िल में रसोई बनती है। अब इस शैली के घर गिने-चुने

ही रह गए हैं। कोट शैली के मकानों में तीसरी मंज़िल में अन्दर से दरवाज़ा खुलता है, इसके बाहर चारों ओर बरामदा होता है। इस प्रकार के घर को फिरकी वाला घर भी कहा जाता है। लोकगीतों में कहा भी है– *घौर तेरा बोला उथड़ी धारा, सा बोला फिरकी आला लो।* अर्थात् तेरा फिरकी वाला घर ऊंचे स्थान पर सुन्दर दिख रहा है।

इन घरों की चिनाई काठकुणी पद्धति से पत्थर और लकड़ी के शहतीरों से की जाती है। शहतीरों को *दार* कहते हैं। दार की मोटाई चार से छः इंच होती है। चारों दीवारों में दो-दो शहतीरें लगाकर इन्हें लकड़ी की कील जिसे *मौकड़ी* कहा जाता है, से जोड़ा जाता है, ताकि वे आपस में जुड़ी रहें। आमने-सामने वाली दीवारों की शहतीरें दायीं-बायीं ओर की दीवारों की शहतीरों के ऊपर रखी जाती हैं। दार के ऊपर की खाली जगह को *मेट* कहा जाता है। शहतीरों के रखने का यही क्रम छत तक लगातार चलता है। शहतीरों के बीच में चार से छः इंच की खाली जगह में गढ़े हुए पत्थरों से चिनाई की जाती है। चारों कुणी (कोनों) पर केवल लकड़ी ही लकड़ी दिखाई देती है। इसीलिए इसे काठकुणी शैली कहते हैं।

उझी के अधिकतर गांव ऊंचे स्थान पर बसे हुए हैं, जहां किसी बाढ़ आदि का खतरा न हो। मनाली, वशिष्ठ, जगतुसख, नग्गर, नसोगी, कन्याल, सियाल, कोठी, पलचान, सोलंग आदि गांव इसीलिए व्यास से बहुत ऊपर बसे हुए हैं, ताकि व्यास में बाढ़ आने पर गांव को कोई नुकसान न हो। ज्यों-ज्यों आबादी बढ़ रही है, लोगों ने नदी के पास या खड्डों के किनारे घर बनाने आरम्भ कर दिए हैं। यही कारण है कि आज जब बादल फटता है तो सबसे ज़्यादा नदी-नालों के किनारे पर बसे लोग ही प्रभावित होते हैं।

जब से इमारती लकड़ी मिलना मुश्किल हो गया है तब से काठकुणी शैली के मकान बनने बन्द हो गए हैं। अब तो मनाली के आसपास रेत-बजरी के मकान बनने लगे हैं। बावजूद इसके छतों को कुल्लुई शैली में ही बनाना जारी रखा गया है।

गांव से दूर खेतों में फसल के समय काम करने तथा पशु रखने की सुविधा के लिए उझी के बहुत से खेतों में दोघरे बने देखे जा सकते हैं। दोघरे ढाई मंज़िल के मकान हैं लेकिन ये छोटे होते हैं। फसल का काम निपटाने के बाद इनमें घास-लकड़ी इत्यादि रखा जाता है।

घर बनाने से पहले देवता से जगह का चयन करवा कर पुरोहित द्वारा

दिन शोधने और देवता द्वारा उस दिन को निर्धारित किए जाने के बाद *पाथरू* लगाया जाता है। पाथरू लगाने से पूर्व मूल पत्थर को घड़कर व उसे पानी से धोकर उसकी पूजा की जाती है। पूजा में सुपारी, फूल, अक्षत, धूप, देसी घी में बना आटे का हलवा तथा चिल्हड़ू का प्रयोग किया जाता है। पूजा करने के बाद हलवा तथा चिल्हड़ू के कुछ टुकड़े पूजा के पत्थर पर रखकर उसे मकान की नींव में स्थापित करते हैं। इस क्रिया को *पाथरू लाणा* कहते हैं। इस अवसर पर मकान मालिक तथा मिस्तरी के माथे पर अक्षत व तिलक लगाया जाता है। मिस्तरी के औज़ारों में लाल डोरी बांधकर पूजा की जाती है। उसके बाद नींव भरने का काम आरम्भ होता है। नींव भरने को *तोप देणा* कहते हैं। कमरों के हिसाब से निशान लगाये जाते हैं । इस क्रिया को *घौर आईरना* कहा जाता है। प्रायः चौकोर कमरे नहीं बनाये जाते। माना जाता है कि चौकोर कमरा देवता का होता है। इसलिए नौ-ग्यारह, ग्यारह-तेरह या तेरह-सत्रह आदि लम्बाई–चौड़ाई के कमरे आईरे जाते हैं। नींव भरने के बाद उसे लगभग छः महीने या एक साल तक ऐसा ही रखा जाता है, ताकि नींव बैठ जाए। उसके बाद देवता और पुरोहित से दिन निकलवाकर दरवाज़ा खड़ा करने का काम पात्थरू लाने की भांति पूजा-पाठ से किया जाता है। जब मकान की पहली मंज़िल की चिनाई पूरी हो जाती है तो उसके ऊपर लम्बी-लम्बी शहतीरें जोड़कर उसे कमरे के चारों ओर लकड़ी के खंबों के ऊपर रखी लकड़ी से जोड़ा जाता है। उसके बाद दूसरी मंज़िल की चिनाई की जाती है। दूसरी मंज़िल में इसी तरह खम्बे तथा शहतीरें लगाई जाती हैं। तीसरी मंज़िल में उतनी ही चिनाई की जाती है जितनी छत डालनी हो। छत पर पड़ने वाले प्रथम स्लेट की पूजा करके छत डालने का काम आरम्भ किया जाता है। छत पूरी डालने के बाद मिस्तरी को टोपी पहनाकर व खिला-पिला कर विदा किया जाता है। उसके बाद मिट्टी–गारे से लिपाई करके घर का काम पूरा होने पर घर की प्रतिष्ठा करवाई जाती है।

घरपेषनी

घर की प्रतिष्ठा करने के लिए कुल देवता और ग्राम देवता को बुलाया जाता है। जब देवता घर के प्रांगण में पहुंचते हैं, तो उस समय घर की मुखिया थाली में अक्षत, चावल, धूप, फूल लेकर उनकी पूजा करती है। तत्पश्चात् सांझ ढलने पर घर के चारों ओर देवता द्वारा सूत की डोरी का (पहले बगड़ घास का) सूत्र बांधा जाता है। सूत्र बांधते समय इस बात का विशेष ख़याल रखा

जाता है कि सूत कहीं से न टूटे। विश्वास किया जाता है कि घर के चारों तरफ सूत्र बांधने से घर के अन्दर आसुरी शक्तियां प्रवेश नहीं करती हैं और घर रहने योग्य हो जाता है। सूत्र बांधने के बाद एक बकरा काटा जाता है। अगली सुबह भोर होने से पूर्व देवता के गूर व पुजारी के अलावा अन्य पांच व्यक्ति एक बड़ा बकरा लेकर छत पर जाते हैं और छत के शिखर पर जाकर उसे काटते हैं। इसका लहू छत में चारों तरफ फैलता है। इसे *चलौला देणा* कहते हैं। कटे बकरे को नीचे लाकर देवरथ के पास हलवा एवं चिल्हडू का प्रसाद चढ़ाया जाता है। कटे हुए बकरे की दिन में सभी आमंत्रित लोगों को धाम परोसी जाती है।

वेषभूषा

जब इस पृथ्वी पर मानव जाति का प्रादुर्भाव हुआ, तब मानव को न तो शरीर ढकने की सुध थी और न ही आशियाना ढूंढने की। वह प्राकृतिक रूप से नंग धड़ंग होकर केवल पेट की क्षुधा शांत करने के लिए यत्र तत्र भटकता रहता था। भीषण गर्मी से जब उसकी चमड़ी झुलसने लगी होगी तो उसने पेड़ पौधों के पत्तों से अपने शरीर को ढकने की कोशिश की होगी। फिर धीर धीरे पशुओं की ऊन से वस्त्रों का निर्माण किया जाने लगा और शरीर को सौंदर्य प्रदान करने के लिए आभूषणों को पहनने की रिवायत आरम्भ हो गई। पेट की भूख मिटाने हेतु आदि मानव ने कन्द मूल के साथ साथ पशु पक्षियों का आखेट करना शुरू किया। इस तरह मानव के विकास क्रम में वस्त्र, आभूषण और खानपान मनुष्य की मूलभूत आवश्यकता में शुमार हो गया।

मनाली के गांवों में वर्ष के लगभग आठ मास ठण्डे रहते हैं। सर्दियों में तापमान शून्य डिग्री से भी नीचे चला जाता है। स्वाभाविक है कि ठण्ड से बचाव के लिए ऊन से निर्मित वस्त्र यहां के निवासियों की प्रमुख ज़रूरत रही है। ऊन का पाजामा, कुर्ता, चोला, कोट, पट्टू, टोपी तथा खुंठला आदि वस्त्रों को लोग भेड़ बकरियों की ऊन से बनाकर पहनते रहे हैं। सिलाई मशीन के यहां पहुंचने से पूर्व लोग हाथ से ही वस्त्रों को सिलते थे। अब सिलाई मशीन से वस्त्रों को सिला जाता है। आजकल ऊनी वस्त्रों के साथ सूती तथा टैरीकॉट के कपड़ों से बने वस्त्रों का प्रचलन हो गया है। ऊनी वस्त्र केवल कोट, चोले तथा पट्टू तक ही सीमित रह गए हैं।

टोपी

सिर को ढकने के लिए पुरुष टोपी का प्रयोग करते हैं। पुराने समय

में यहां ऊन की गोल आकार की टोपी पहनी जाती थी। गोल टोपी गर्दन की तरफ एक से डेढ़ फुट लम्बी होती थी, इसे पुहाल टोपी कहा जाता था। बाद में इसमें माथे की तरफ शनील का बॉर्डर प्रयुक्त होने लगा। आजकल इसके बॉर्डर पारम्परिक डिज़ायनयुक्त बनने लगे हैं। कुल्लू टोपी देश विदेश में प्रसिद्ध हो चुकी है। यह टोपी आस्था का प्रतीक भी है। देवता को शीष नवाते हुए, उसकी पालकी, निशान तथा अन्य साज़ो सामान उठाते हुए टोपी का पहनना अनिवार्य होता है। अतिथि सत्कार के रूप में कुल्लुई टोपी भेंट करने का रिवाज़ आम है। किसी विशिष्ट अतिथि को सम्मानित करने में भी इसी टोपी को पहनाए जाने की परम्परा है।

नाटी नाचते हुए यहां की काले रंग की मुलायम ऊन-पट्‌टी से बना टोपा पहना जाता है। चोला, टोपा, कलगी पहने लोकनर्तकों की शान निराली होती है। लोकगीत में भी इसके बारे में कहा गया है–

चोला टोपा कलगी कुल्लू रा बाणा, देश सा उझीरा म्हारा हो।
जान्हू बोला झाड़िदा झिकडू झेची सा मामी रा बाणा हो।

यह टोपा सात-आठ इंच चौड़ी पट्‌टी काटकर दोनों किनारों को सिलाई करके जोड़कर तैयार किया जाता है, फिर गोल रोटी की भांति पट्‌टी का एक अन्य टुकड़ा ऊपर जोड़ा जाता है। इसको पहनने के बाद इसे चारों ओर नीचे से ऊपर मोड़ कर कान तक लपेटा जाता है। इसमें मस्तक पर मोनाल की कलगी लगाई जाती है।

चोलू

यह परिधान इस क्षेत्र में सबसे अधिक पहना जाता है, इसे भेड़ की ऊन से बनाया जाता है। इसे कुर्ता भी कहते हैं। पूरी बाजुओं वाला यह परिधान घुटनों तक लम्बा होता है। इसके अग्रभाग में छाती से ऊपर गले तक एक इंच चौड़ी पट्‌टी लगी होती है और ऊपर इतने इंच का ही कालर बना होता है। पुराने समय में इसे स्त्री तथा पुरुष दोनों द्वारा पहना जाता था।

वास्कट

कुर्ते के ऊपर बिना बाजू की वास्कट पहनने का रिवाज़ है। वास्कट को फतुही भी कहते हैं। यह ऊन की बनी होती है।

कोट

फतुही के ऊपर एक अन्य परिधान पहना जाता है जिसे कोट कहते हैं। कोट फतुही का ही बड़ा रूप है। फतुही में बाजू नहीं होते जबकि कोट

में बाजुएं भी होती हैं। कोट में अन्दर की तरफ सूती कपड़ा सिला होता है जिसे *अन्दरस* कहते हैं।

चोला

यह परिधान लोकनृत्य में पहना जाता है। यह मुलायम ऊन से बना होता है। चोले में बाजुओं को एक ही टुकड़े से बनाया जाता है। बाजू के नीचे दोनों ओर लम्बी-लम्बी कतरनें जोड़ी जाती हैं। इन कतरनों को कली कहते हैं। कलियों की संख्या 24 से 32 तक होती है। बाजू के नीचे कली की चौड़ाई कम होती है, जो बढ़ते हुए नीचे घुटने तक तीन चार गुना चौड़ी हो जाती है। छाती के पास चोले का घेरा शरीर के आकार के अनुरूप होता है। कतरनों की चौड़ाई बढ़ने के साथ घुटने के पास चोले का घेरा काफी बड़ा हो जाता है। इसका घेरा लगभग 5 से 7 मीटर तक होता है। इसके अग्रभाग में बटन नहीं होते, इसलिए पहनने के बाद कमर के पास दायां भाग बायें भाग के ऊपर रखकर उसके ऊपर सफेद रंग की ऊनी या सूती गाची बांधी जाती है। नृत्य करते समय गाची के नीचे चोला फिरकी की तरह गोल घूमता हुआ नज़र आता है।

थीपू

महिलायें सिर पर थीपू पहनती हैं। इसे ढाटू भी कहते हैं। यह एक वर्ग मीटर कपड़ा होता है, जिसको त्रिकोणाकार बनाकर सिर पर इस तरह से बांधा जाता है कि महिला के सिर के बाल उससे पूरी तरह ढक जायें, केवल गुंथे हुए बालों की लट दिखती रहे। यहां लाल, काले तथा विभिन्न रंगों के ढाटू प्रचलन में हैं।

पट्टू

कुल्लू-मनाली में यद्यपि पुराने समय में लोग केवल अपने प्रयोग के लिए ऊनी कपड़े बुनते थे, परन्तु ज्यों-ज्यों इस प्रदेश के विभिन्न स्थान व्यापार के लिए मध्य एशिया और पूर्वी यूरोप के देशों के साथ जुड़ गए तो यहां का बुना हुआ ऊन का माल, विशेष रूप से पट्टू-पट्टियां, एक ओर तिब्बत, चीन, यारकन्द, खुतान, काशगर, कन्धार और दूसरी ओर पंजाब आदि भारत के मैदानी क्षेत्रों तक पहुंचा। कुल्लू के पट्टू और दोहड़ू शालोद्योग के मूलाधार हैं। पट्टू या दोहड़ू हिमाचल प्रदेश के किन्नौर, कुल्लू, चुराह और पांगी क्षेत्र के विशिष्ट परिधान हैं, जो अन्यत्र कहीं प्रचलित नहीं हैं। यह एक कम्बल है जो साड़ी की तरह विशेष रूप से पहन कर सारे शरीर को ढक देता है। स्थानीय

लोगों को आदि-काल से वस्त्रापूर्ति के लिए बाहरी साधन पर निर्भर नहीं रहना पड़ा है। भेड़ों की ऊन से स्त्रियों के पहनने के लिए पट्टू, पुरुषों के लिए चोला और ओढ़ने तथा बिछाने के लिए दोहड़ू, नमदे और कंबल तैयार करके यहां के लोग कपड़ों की स्थिति में हमेशा स्वावलम्बी रहे हैं। आज भी किन्नौर, कुल्लू और चम्बा-पांगी के नर्तक-नर्तकियां कड़कती धूप और मैदानों की गरमी में ऊन का चोला और फूलदार पट्टू पहन कर मंच पर नाचते हैं और इस पहनावे में गर्व अनुभव करते हैं।

भेड़ें पालना, भेड़ों से ऊन लेना, उसे पींजना, कातना, बुनना और पट्टू, चोले आदि वस्त्र बनाना यहां के लोगों का आरम्भ से ही घरेलू उद्योग रहा है। यह धंधा आज भी गांवों में घर-घर में चलता है। गद्दियों और पुहालों के अतिरिक्त प्रत्येक परिवार जहां खेती-बाड़ी का काम करता है, वहां भेड़ें भी पालता है। भले ही हर घर में भेड़-बकरियां अधिक न हों, परन्तु इतनी अवश्य होती हैं, जिनसे वर्ष भर में आवश्यक वस्त्रों के लिए पर्याप्त ऊन प्राप्त हो। लोग स्वयं ऊन कातते हैं और घरेलू हथकरघा में बुनने का काम करते हैं। जिनकी अपनी भेड़ें नहीं हैं वे एक-दूसरे से ऊन खरीद और कात कर कपड़े बुनते हैं।

यही इस घरेलू उद्योग की विशेषता है। समाज के सभी लोग चाहे किसी जाति-धर्म से हों, इस धंधे को विशेष रूप से तब करते हैं जब बाहर ठंड और बर्फ हो, खेती-बाड़ी का काम कम हो या होता ही न हो। इसमें किसी तरह की हीन भावना नहीं समझी जाती, बल्कि सम्मान की भावना रहती है, जब मेलों, त्योहारों और अन्य आयोजनों में अपने हाथ से काता, बुना और बनाया वस्त्र पहना जाता है।

इस प्रकार पट्टू, चोला, कंबल, दोहड़ू आदि बनाने का व्यवसाय परम्परा से चला आ रहा है और यह हस्तशिल्प की एक महत्त्वपूर्ण विधा है। पुराने समय में और कुछ हद तक आज भी, स्थानीय भेड़ों की ऊन अधिक नर्म नहीं होती, कातते हुए बारीक धागा नहीं निकलता। मोटी, सख्त ऊन से प्रायः चोले, पट्टू, दोहड़ू ही तैयार होते हैं, जो मोटे, भारी और किंचित् भद्दे भी होते हैं। स्त्रियां आम दिनों में इन्हीं मोटे पट्टुओं को पहनती हैं। पट्टू पहनना भी एक कला है। इसे इस तरह से लपेटा जाता है कि सारा शरीर ढकने के बाद पट्टू के दो सिरे कन्धों के ऊपर से सामने की ओर आ जाते हैं और पीठ पर कोई सिलवट नहीं रहती। दोनों सिरों को चांदी या लोहे की मोटी दो सूइयों द्वारा, जिन्हें बुमणी कहते हैं, दोनों कन्धों के आगे टाँक दिया जाता है। पट्टू को कमर

पर कपड़े की पट्टी से बांधा जाता है। इस पट्टी को *पटकू* कहा जाता है। यदि पटकू ऊन का हो तो उसे गाची कहते हैं। भेड़ के मेमने की ऊन सदा नर्म रहती है। मेमनों की ऊन से हलके और नर्म पट्टू तैयार होते हैं। यही नर्म ऊन पूर्व में शाल बनाने के काम में लाई जाती थी। तब नर्म ऊन के हलके पट्टू ही शाल कहलाते थे। आज भी बिना फूल के नर्म हलके पट्टू मरदाना शाल कहलाते हैं। इन्हें स्थानीय भाषा में लोई कहते हैं।

लोई, पट्टू और दोहडू में रूपांकन का रिवाज़ बहुत पुराना है। अच्छा या सुन्दर बनना या बनाना मनुष्य की प्राकृतिक प्रवृत्ति है। इसी प्रवृत्ति में विकास के बीज विद्यमान हैं। मनुष्य अपने सीमित साधनों में फेर-बदल करके नये उपक्रम ढूंढता है। कपड़े बुनने के कार्य में दो तरह के धागों का प्रयोग होता है– एक लम्बाई की ओर करघे में लगाया गया सूत, जिसे ताना कहते हैं। दूसरा चौड़ाई की ओर के धागे जो बुनते समय नली के माध्यम से एक तरफ से दूसरी तरफ को आर-पार गुज़ारे जाते हैं, इसे बाना कहते हैं।

आरम्भ में पट्टू एक ही रंग के बुने जाते थे। उनमें ताना और बाना दोनों या तो काली या फिर सफेद या भूरे रंग की ऊन के होते थे। बाद में जब ताने और बाने में दो भिन्न रंगों की ऊन का प्रयोग होने लगा, तो उनसे बने दो रंग के दोहडू या पट्टू को चाधरू या चादरू कहा जाने लगा। इसी क्रम में जब ताना गांठते समय दस-पन्द्रह जोड़े धागे सफेद और अगले उतने ही धागे काली ऊन के क्रम से जोड़े गए और उसी क्रम में बाने में भी बारी-बारी इतनी ही दूरी पर सफेद और काले धागे बुने गए तो इससे जो सफेद और काली डिब्बियों वाला पट्टू बुना गया उसे *चितरा चाधरू* कहा गया। आज भी लोक नाट्य हरण की पारम्परिक ओढ़नी यही है। यह बुनाई में रंगीनता लाने की प्रथम कड़ी रही है।

रूपांकन का मूल आरम्भ *दोंधड़ी* या *दंदड़ी* (पट्टू के दोनों किनारों पर ताना-बाना में बनाई गई विशेष धारी) से हुआ है। बुनने का मूलाधार हथकरघे में लगी चार पावलियां (पांव से चलाई जाने वाली फट्टियां) हैं, जो चार बरूओं (बांस की दो डंडियों में गांठी गई सूतलियां जिनमें ताना पिरोया होता है) से जुड़ी होती हैं। सामान्य बुनाई में बारी-बारी एक-एक पावली चलाई जाती है, परन्तु दोंधड़ी में दो पावलियां इकट्ठी चलती हैं। इस तरह ताने का धागा दिखाई नहीं देता, जो साधारण बुनाई पर क्रम से दिखाई देता है। केवल बाने का धागा दिखाई देता है और भिन्न रगों के धागों की सीधी धारियां बन

जाती हैं, जो दांत की तरह एक के बाद दूसरी नज़र आती हैं, इसीलिए इनका नाम दंदड़ी या दोंधड़ी पड़ा।

इसी के तुरन्त बाद लम्बाई के छोर के बॉर्डरों का आरम्भ हुआ। आरम्भ में काली ऊन और सफेद ऊन की धारियां निकाली गईं, जो सीधी ऊपर से नीचे की ओर रहती थीं। इसे बिशणोई धारी और ऐसे पट्टू को बिशणोई धारीए पट्टू कहते हैं। जिस प्रकार वैष्णव धर्म के अनुयायी माथे पर ऊपर से नीचे को तिलक लगाते हैं, वैसे ही पट्टू की धारियां होने के कारण इन्हें बिशणोई धारीए पट्टू कहने की प्रथा चली होगी। गांवों के अनेक घरों में आज भी ऐसे पुराने पट्टू मिलते हैं।

मेमने की ऊन सबसे नर्म होती है। मेमने की पहली बार काटी गई ऊन को जलाहू री ऊन कहते हैं। जो नर्म और हलका पट्टू बनाया जाता है, उसे लोई कहते हैं। जब यही लोई पशम की बनाई गई तो उसे मर्दाना शाल कहा गया और जब इसमें फूल भी डाले गए तो शाल कहलाई गई।

पहाड़ी भाषा में पशम को फम्ब कहते हैं, यह विशेष प्रकार की बकरी से प्राप्त होती है, जो चाङ-थाङ, पश्चिम तिब्बत, तियान-शान आदि क्षेत्रों में पाली जाती है। इसे कुलुई बोली में चीगू कहते हैं। स्वतन्त्रता से पूर्व और जब तक चीन के साथ सम्बन्ध अच्छे थे, शरद ऋतु आरम्भ होने से पूर्व चीन और तिब्बत से ब्यांगी भेड़ें और चीगू बकरियां कुल्लू, रामपुर आदि क्षेत्रों में पहुंच जाती थीं। ब्यांगी भेड़ों की ऊन स्थानीय भेड़ों की ऊन से अधिक लम्बी और नरम होती है। चीगू के शरीर पर ऊन दो तहों में पाई जाती है। बाहर की तरफ की ऊन बकरी की ऊन की तरह मोटे रेशों वाली सख्त और खुरदरी होती है जबकि अंदर की तह की ऊन अत्यन्त बारीक, घनी और नरम होती है। इसे ही पशम कहते हैं। सबसे मुलायम, कोमल और नरम पशम टंगरोल (आइबैक्स,) मियांटू (भराल), नियाण (ब्लूशीप), एम्बरू, यामू (एंटीलोप बकरी), कर्थ (थार) आदि जंगली पशुओं से प्राप्त होती है। ये लाहुल-स्पिति, किन्नौर और लद्दाख की ऊंची पर्वत चोटियों पर पाए जाते हैं। ग्रीष्म ऋतु में जब इन्हें गरमी लगती है तो ये बड़े पत्थरों और चट्टानों के साथ अपने शरीर को रगड़ते हैं, जिससे इनकी नरम ऊन इन चट्टानों में चिपक जाती है। लोग इसे बड़े परिश्रम और दक्षता के साथ निकालकर इकट्ठा करते हैं।

कुल्लू के पट्टू की अलग ही पहचान है। मनाली की महिलायें पट्टू पहनने में गर्व महसूस करती हैं। यद्यपि पट्टू का प्रयोग चम्बा के चुराह, पांगी,

मण्डी के चौहार, शनोर, कांगड़ा के बड़ा भंगाहल में भी होता है, परन्तु जिस सलीके से यह मनाली की महिलाओं द्वारा पहना जाता है वैसा अन्यत्र नहीं देखा जाता। पट्टू साड़ी की तरह गले से लेकर पैर तक पूरे शरीर को ढकता है। इसकी लम्बाई लगभग 9 फुट और चौड़ाई 4 फुट होती है। इसे चांदी की बुमणी से दोनों कन्धों के पास टांका जाता है। पट्टू कई प्रकार के होते हैं- कन्नी, बलाह, कुशी, छियां, बुलबुलचश्म, टैंडलू, मगोहलू, चित्रा और एक फूल तथा तीन फूलवाला।

शाल

शालोद्योग के इतिहास में शालों में फूल (रूपांकन) डालने के आविष्कार ने भारी क्रान्ति लाई है। इस कला ने शाल और पट्टू को मात्र परिधान के क्षेत्र से ऊपर उठाकर अलंकरण और प्रसाधन आयाम में ला खड़ा किया और एक साधारण वस्त्र को आभूषण में बदल दिया। शाल अब मात्र पहनने और ओढ़ने की वस्तु नहीं है, श्रृंगार और प्रदर्शन का शिल्प भी है। इसने ज़रूरत को सजावट में बदल दिया है।

शालों में फूल डालना महान् कला है। अच्छे डिज़ाइन बनाना कारीगर की सूझ-बूझ, कल्पना-शक्ति और कलाप्रियता का प्रतीक है। फूलों में सबसे पहले रेखा-चित्रों की भूमिका रही है। उनमें भी रेखागणित के चिह्नों का प्रमुख स्थान रहा है, क्योंकि ताने और बाने के धागों से आर-पार, ऊपर-नीचे की सीधी रेखाओं वाला डिज़ाइन डालना सहज़ और सरल है। बाद में इन्हीं पर आधारित अन्य प्रारूप और रेखा-चित्र तैयार हुए। कलाकार वर्गांकित काग़ज़ों (ग्राफ पेपर्ज़) पर रेखाचित्र बनाते हैं और बुनकर उतने ही धागे गिनकर शालों में डिज़ाइन उतार देते हैं।

शालों में फूल और चित्र मात्र सुन्दरता के प्रकरण नहीं हैं। वे बुनकर की धार्मिक आस्थाओं और सांस्कृतिक परम्पराओं के लाक्षणिक संकेत भी हैं। किन्नौर के बॉर्डरों में बने बौद्धों के स्तूप और छोर्तेन तथा कुल्लू की शालों में शिखराकार मंदिर और एक छोटे वर्ग के बाहर दूसरा बड़ा वर्ग काठकुणी मंदिर के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। शालों में रेखागणित के सिद्धान्तों पर आधारित स्वस्तिक के दोनों रूप अर्थात् प्रथम सदी ईसवी से पूर्व का बायें से दायें ओर तथा वर्तमान दायें से बायें ओर के रेखाचित्रों में बुनकर की धार्मिक आस्थाएं जुड़ी हुई हैं। रंगों का चयन भी बुनकर विशेष की सौन्दर्य अनुभूति का प्रमाण है। एक ही प्रतिरूप केवल रंगों के चयन और बदलने से भिन्न ग्राहकों को भिन्न आकर्षण प्रदान करता है। यह

भी बुनकर की दक्षता और कुशलता पर निर्भर है कि फूल दोनों ओर एक-जैसा स्पष्ट, साफ और सुन्दर हो। कोई सीधा या उल्टा पासा न हो।

इस तरह शाल ने वर्तमान स्वरूप तक पहुंचते-पहुंचते एक लम्बी यात्रा तय की है। आरम्भ में यह एक साधारण लोई या चादर थी। तब इसका मूल्य केवल पशम की शुद्धता और स्वच्छता पर निर्भर करता था। क्या पूर्णतः अच्छी पशम की है अथवा एक धागा ऊन और एक पशम का है, अथवा ताना ऊन का और बाना पशम का है और वह कितना साफ़ बुना हुआ है या उसकी विशेषता इसकी झालरों पर निर्भर करती है। झालरों के लिए शाल के दोनों सिरों पर लम्बा ताना बिना बुने छोड़ा जाता है और फिर उन्हें विशेष तरह से गांठा जाता है। सबसे अच्छी झालर को गुणे कहा जाता है। इसके लिए सिरों पर पहले ही इतना लम्बा ताना छोड़ना पड़ता है कि चार-चार धागों के समूह को सिरे पर गांठ देने से उनके बीच में से हाथ की चार उंगलियां आसानी से गुज़र जाएं। तब सारे ताने के चार-चार धागों के समूह बनाए जाते हैं और उन समूहों की सुन्दर झालरें बनाई जाती हैं। कुछेक स्त्रियों को ही यह कला आती है और उनकी बड़ी कदर है। अब यह कला भूलती जा रही है। आजकल गुणे के स्थान पर जाली बनाई जाती है या फिर छुलकू। दोनों में से जाली अधिक लोकप्रिय है। पुराने समय में शाल हमेशा दो पट्टों में तैयार की जाती थी फिर दोनों पट्टों को उन्हीं धागों से हाथ द्वारा ऐसी चतुराई से सिला जाता था कि सिलाई दिखाई नहीं देती थी।

पहले-पहले इन सादा शालों के दोनों सिरों पर एक-एक फूल डाला जाने लगा तब चौड़ाई की ओर के फूलों का रिवाज़ आया जो अलग ही बुन कर सिले जाते थे। इन्हें बॉर्डर कहते हैं। अब तो उसी ताने पर एक साथ बॉर्डर बनते हैं, परन्तु इस तरह समय अधिक लगता है। धीरे-धीरे लम्बाई की ओर एक के बजाय दो फूल डाले जाने लगे। तभी स्थानीय स्त्रियों द्वारा पहने जाने वाले पट्टुओं में तीन फूल बनने लगे। पट्टुओं की देखा-देखी शालों में भी तीन फूल डलने लगे। अब तो लम्बाई की ओर तीनों फूलों के साथ-साथ चौड़ाई की ओर दोनों किनारों पर उसी ताने में अन्य रेखा-चित्र भी बनाए जाने लगे हैं। ये दो प्रकार के होते हैं, एक तिकोणे जिन्हें *बेल* कहते हैं। ये जितने लम्बे और गहरे रंग के होते हैं, उतने बॉर्डर के फूल से मेल खाते हुए सुन्दर लगते हैं, परन्तु इन्हें बुनने में समय अधिक लगता है। दूसरी प्रकार के *गुड़ी* कहलाते हैं। ये गोल फूल की तरह होते हैं जो मरीनो ऊन से बनते हैं और रफल आदि

से भी। आजकल तो शालें फूलों व बेलों से पूर्णतया भरी होती हैं। एक ही शाल में तीन-तीन फूल, दोनों ओर फूलों के चौड़े बॉर्डर, फूलों के बीच बेल, बेल के साथ गुड़ी तथा शालों के बीच के खाली स्थानों पर तारे। इस तरह की शाल तैयार करने के लिए छह महीने से अधिक समय लगता है।

आज कुल्लू शाल की अन्तर्राष्ट्रीय पहचान बन चुकी है। यह पट्टू का ही लघु रूप है परन्तु इसे पट्टू की तरह नहीं पहना जाता। यह केवल शरीर पर ओढ़ने के काम आती है। जो भी पर्यटक मनाली घूमने आता है, वह कुल्लुई शाल खरीदे बिना यहां से नहीं लौटता। शाल लगभग एक मीटर चौड़ी तथा ढाई मीटर लम्बी कई डिज़ाइनों में बनी होती है। आजकल यहां हज़ारों लोग इसके कारोबार से अपने परिवार का भरण-पोषण करते हैं।

पजामी या सूथन

आज से पचास वर्ष पूर्व तक मनाली की महिलायें पाजामी नहीं पहनती थीं। केवल घुटनों से नीचे टखनों तक पाहुचे नाम का वस्त्र पहनती थीं। गत आधी सदी पूर्व से ही पाजामी पहनने की परम्परा आरम्भ हुई है। महिलायें चूड़ीदार पाजामी तथा पुरुष ऊन की कली वाली चूड़ीदार सूथन पहनते हैं।

आभूषण

व्यास घाटी में सोने व चांदी के विविध प्रकार के आभूषणों को पहनने को समृद्ध परम्परा रही है। यहां की महिलायें श्रृंगार प्रिय रही हैं। वे सिर से लेकर पांव तक सोने-चांदी के आभूषणों से सजी रहती हैं। यहां आज भी जब लड़के-लड़की के विवाह की बात चलती है, तो लड़की वाले वर पक्ष से आभूषणों की मांग करते हैं। इससे इस बात का पता चलता है कि गहनों के प्रति लोगों में कितना आकर्षण है। यह भी माना जाता है कि आर्थिक संकट के समय ये गहने ही परिवार का सहारा बनते हैं। यहां सोने तथा चांदी दोनों प्रकार के गहने पहने जाते हैं। आर्थिक रूप से सम्पन्न लोग सोने के गहनों को अधिक पहनते हैं, जबकि गरीब लोग चांदी के गहनों से ही गुज़ारा करते हैं। प्रायः नाक तथा कान के गहने सोने के होते हैं। गले, हाथ तथा पैर के गहने आर्थिक स्थिति के अनुसार सोने या चांदी के बने होते हैं। गले के आभूषण जिनका वज़न अधिक होता है, अक्सर चांदी के ही बने होते हैं।

महिलायें गले में रुपये की माला, जौमाला, चांपकली, छाटा, डोडमाला, चंद्रहार आदि चांदी से बनी मालायें पहनती हैं। इसी तरह हाथों में कांगणू, सनांगणू, टोके, चूड़ी, मरीदड़ी, बाजूबन्द, कान में सोने के कनबालू, कनविचे, गोखड़ू, खुण्डी-खुण्डू, नाक में बालू-ब्लाक, तिली, फूली, लौंग, पैर में पाजेब,

जंजीरी झालरें, बिच्छू इत्यादि पहने रखती हैं। पुरुष कान में सोने की नन्ती तथा अंगुलियों में अंगूठी पहनते हैं।

खानपान

सृष्टि के सृजन के साथ ही मानव आहार की खोज में प्रयासरत रहा है। पेट भरने के लिए वह पहाड़ों, जंगलों और मैदानों में सैकड़ों भक्ष्य फलों और सब्जियों, घास-पात और कंद-मूलों को खोजकर सेवन करता आ रहा है। धीरे-धीरे उसने खेती करनी सीखी, अनाज को बीजना और काटना आरम्भ किया। अपनी रुचि के अनुसार अन्न से भोज्य पदार्थों को पकाना शुरू किया।

धरती माता ने स्वयं मनुष्य का पेट भरने के लिए अपने आंचल में वह सब कुछ पैदा करना आरम्भ किया जिसकी उसे आवश्यकता थी। इसमें कोई संदेह नहीं की कृषि की उत्पत्ति में उन ठोस प्राकृतिक परिस्थितियों ने बहुत बड़ी भूमिका निभाई जिनमें लोग रहते थे। यह अकारण ही नहीं कि विश्व के जिन-जिन भागों में सबसे पहले कृषि कार्य आरम्भ हुआ वे सभी 20वें और 45वें अक्षांश के बीच अर्थात् सर्वाधिक अनुकूल कटिबन्ध में स्थित हैं।

प्राणियों में मनुष्य सबसे अधिक जागृत जीवधारी रहा है और अपनी प्रारम्भिक अवस्था से ही प्राकृतिक रूप से उपजे हुए कन्द-मूलों पर निर्वहन करता रहा है। आग के आविष्कार के बाद इसने अपने परिवेश, भौगोलिक परिस्थिति और वहां पैदा हुए अन्न के अनुसार भोजन बनाना शुरू किया।

देवभारथाओं में वर्णन आया है कि व्यास घाटी में सबसे पहले गौतम ऋषि ने अनाज बीजना आरम्भ किया। उसके बाद अन्य लोगों ने भी यह काम सीखा। यहां आरम्भ में लोग स्वतः उगने वाली फसलों की रक्षा ही करते थे। अनाज जब पक रहा होता तो चिड़ियों को उड़ाते थे, वन्य जंतुओं के झुण्डों को खेतों में नहीं आने देते थे, कभी-कभी सोच-समझकर फसल का एक भाग काटे बिना रहने देते थे, ताकि अगले साल अनाज फिर से स्वतः उग आए। समय-समय पर सूखा भी पड़ता था, जब धरती पत्थर बन जाती थी और उस पर गिरने वाले बीजों को ग्रहण नहीं करती थी। यह देखते हुए अन्ततः लोगों के मन में यह विचार आया कि ज़मीन की गुड़ाई करनी चाहिए। सैंकड़ों छोटी-बड़ी खोजें हुईं, तब कहीं जाकर जंगली फल व कंद-मूल बटोरने वालों की छड़ी फावड़ा बन गई और स्वयं संग्रहकर्ता किसान बन गया। मानव ने सैंकड़ों वनस्पतियों का कायाकल्प करके उन्हें कृषि में स्थान दिलाया और हमारी संस्कृति का अभिन्न अंग बनाया।

यह भी माना जाता है कि जब वैवस्वत मनु की नाव जल प्लावन के बाद इस भूमि पर पहुंची और उसके बाद जलस्तर कम हो गया, तो मनु ने सृष्टि के पुनर्निमाण का कार्य यहीं से शुरू किया। महर्षि मनु के साथ आये गौतम ऋषि विभिन्न प्रकार के अनाजों के बीजों को अपने साथ लाये थे। जैसे-जैसे पानी का स्तर घटता गया, यहां की भूमि में उर्वरता के सभी गुण विद्यमान होते गये और मनु महाराज के साथ आये ऋषि-मुनियों ने इस भूमि पर साथ लाये हुए बीजों से बीजाई करनी शुरू की। इस तरह यहां पर अनाज, दालों, सब्जियों तथा फलों का उत्पादन प्रारम्भ हुआ जिसे लोगों ने अपने हिसाब से पकाना प्रारम्भ किया। इस जनपद में पौष्टिक एवं स्वादिष्ट खानपान की एक लम्बी फेहरिस्त है, जिन्हें पकाकर खाया और खिलाया जाता है। यहां प्रमुख रूप से निम्न प्रकार के अनाज से बनी हुई रोटियां, दाल, सब्जियां, पेय पदार्थ आदि प्रचलित हैं।

घीउ-बाड़ी

यह यहां की महिलाओं का सबसे प्रिय खाद्य है। जब कोई महिला प्रसूता होती है तो उसे लगभग छः मास तक घीउ-बाड़ी खिलाई जाती है। बूढ़ी दादियों का मानना है कि बाड़ी के सेवन से प्रसूता के स्तनों में दूध की मात्रा बढ़ती है जो न केवल बच्चे को पौष्टिकता प्रदान करता है, अपितु रोगों से भी बचाता है। इसीलिए प्रसूता होने पर लड़की के मायके वाले तथा अन्य सगे सम्बन्धी उसके लिए घी और गेहूं का आटा लेकर आते हैं, जिसे *नराहलू जाणा* कहते हैं। माना जाता है कि बाड़ी शीघ्र हज़म होती है, पौष्टिक तथा बल प्रदायक होती है। प्रसूति के बाद महिला बहुत ज़्यादा क्षीण होती है, जिस कारण उसे शरीर को गर्म रखने की ज़रूरत होती है। तभी तो यह लोक कहावत प्रचलित है– *मरदा बै मामला, बेट्ड़ी बै हामला मारा सा।* अर्थात् मरद को कोर्ट-कचहरी तथा औरत को प्रसव कमज़ोर करता है।

प्रसूता महिला की कमज़ोरी को घीउ-बाड़ी शक्ति प्रदान करती है। चूंकि बाड़ी शीघ्र पकती है, इसलिए जब कभी कोई ब्याहता अपने मायके आती है तो जाते वक्त उसे घीउ-बाड़ी खिलाकर विदा किया जाता है। गर्मियों में फुआल जब भेड़-बकरियों को ऊंचे पहाड़ों की चरागाहों में चरने के लिए ले जाना शुरू करते हैं, तो उन्हें भेड़ों के मालिक अपने घर खाने पर बुलाते हैं और घीउ-बाड़ी खिलाकर विदा करते हैं। यहां यह भी माना जाता है कि अपने प्रिय

सगे सम्बन्धी को बाड़ी खिलाई जाये तो उन परिवारों में हमेशा मधुर सम्बन्ध बने रहते हैं।

बाड़ी बनाने के लिए सबसे पहले कड़ाही को चूल्हे पर चढ़ाकर उसमें पानी डाला जाता है। जब पानी उबलने लगे तब पानी से एक तिहाई आटा छानकर उसमें डाला जाता है। आटे को पानी के साथ कड़ाही में डंडे से तब तक बराबर हिलाया जाता है जब तक उसमें लालगी न आये। पकने पर उसमें लालगी आ जाती है और वह पके हुए हलवे की तरह गाढ़ी हो जाती है। फिर उसे कड़ाही में से थाली में उड़ेला जाता है। थाली में डालने पर इसको बीच में हाथ की मुट्ठी से कटोरी सी शक्ल दी जाती है और उसमें देसी गाय का घी डाल कर खाया जाता है।

घीउ-खिचड़ू

जब कोई मेहमान घर में अचानक आ जाये और घर में खाना न बचा हो और मेहमान को जाने की जल्दी हो तो सबसे सरल पकवान होता है घीउ-खिचड़ू। यह पकवान प्यार का प्रतीक भी है, इसीलिए प्यार करने वालों को घीउ-खिचड़ू खाने की सलाह दी जाती है। माघ की संक्रांति को खिचड़ू का साजा ही कहा जाता है। माघ की संक्रांति से लेकर फाल्गुन की संक्रांति के दौरान उझी के सभी गांवों में खिचड़ी बनाकर घी के साथ खाने की परम्परा है। खिचड़ू की लोकप्रियता का आभास प्रस्तुत लोक गीत की इन पंक्तियों से भी होता है–

चौल घौरा बै जाणा चिड़ुआ
चौल घौरा बै जाणा।
घौरा जाया की खाणा चिड़ुआ
घौरा जाया की खाणा।
घीउ-खिचड़ू खाणा चिड़ुआ
घीउ-खिचड़ू खाणा।

पतीली में देसी घी डालकर उसे गर्म किया जाता है। गर्म होने पर उसमें प्याज, लहसुन इत्यादि डाला जाता है। जब प्याज़ व लहसुन लाल हो जाये तो उसमें धनियां, मिर्च, नमक इत्यादि डाला जाता है। तत्पश्चात् उसमें माश डालकर अच्छी तरह हिलाया जाता है। कुछ देर के बाद उसमें धोकर चावल डाले जाते हैं और पतीली के ऊपर ढक्कन चढ़ा दिया जाता है। पतीली को चूल्हे पर धीमी आंच में आधे घण्टे तक रखा जाता है। पकने पर पतीली

को चूल्हे पर से उतारकर खिचड़ी को थाली में परोसा जाता है। उसमें देसी घी डालकर स्वाद से खाया जाता है। बीमार व्यक्ति को तो मूंग की खिचड़ी खिलाने की परम्परा है। जिसका पेट भारी हो उसे भी मूंग की खिचड़ी खिलाने की हिदायत दी जाती है। माश या मूंग की जगह जब चावल में आलू डाले जाते हैं तब उसे पुलाव कहते हैं।

घीउ-सीड़ा

घीउ-खिचड़ी की तरह कुल्लू में घीउ-सीड़ा बनाने व खिलाने का विशेष चलन रहा है। यह लोहड़ी के अवसर पर खास रूप से बनाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त गेहूं की नई फसल पकने पर भी सीडू बनाये जाते हैं। जब गाय प्रसूता होती है तब भी नये घी के बनने पर सीडू बनाने की परम्परा रही है।

सीडू बनाने के लिए गेहूं का आटा, मलेड़ा या यीस्ट, बेढ़ना इत्यादि की आवश्यकता होती है। सबसे पहले आवश्यकतानुसार आटे को मलेड़ा या यीस्ट के साथ भिगोकर परात में गूंथा जाता है। अच्छी तरह गूंथने के बाद आटे की परात को सर्दियों के मौसम में ऊनी कपड़े के नीचे डेढ़-दो घण्टे के लिए ढक कर रखा जाता है, जबकि गर्मियों में एक घण्टे तक रखना पर्याप्त होता है। इस दौरान अखरोट, तिल, सोयाबीन, माश, मूंगफली या अफीम के डोडे के दाने को शिला पर बत्ते से पीसकर इसमें स्वादानुसार नमक, मिर्च, हल्दी इत्यादि डालकर पानी के साथ मिश्रित किया जाता है। इसे बेढ़ना कहते हैं। जब एक दो घण्टे में आटा फूलकर तैयार हो जाता है तब उस आटे की सुविधानुसार गोल आरी की रोटी बनाकर उसमें आवश्यकतानुसार बेढ़ना डालकर उसको मोड़ा जाता है और दायें हाथ की अंगुलियों से उसके किनारों को इस तरह मोड़ा जाता है ताकि अन्दर का बेढ़ना बाहर न निकले। अर्ध चन्द्राकार सीडू ऊनी दोहड़ू के ऊपर दस-पन्द्रह मिनट के लिए रखे जाते हैं। इसके बाद पीतल के पतीले में सीडू की मात्रा के हिसाब से पानी डाला जाता है। पानी के ऊपर धनिया के सूखे डंठल या गम्भरू (गलगल) के पत्ते अथवा गेहूं व धान की पलाल रखी जाती है। तत्पश्चात् पतीले को चूल्हे पर रखकर पानी को उबाला जाता है। तत्पश्चात् दोहड़ू पर रखे हुए सीडुओं को एक-एक करके पतीले में डालकर उसके ऊपर ढक्कन रखा जाता है। आधे घण्टे में सारे सीडू

पक जाते हैं। पकने के बाद पतीले को चूल्हे पर से उतारा जाता है और सीड़ू घी के साथ खाये जाते हैं।

दाल-सीड़ू

मक्की के आटे के भी सीड़ू बनाये जाते हैं। इन्हें बनाने की विधि थोड़ी भिन्न है। इन्हें राजमाश या माश की दाल के साथ पकाया जाता है। फुआल चरागाहों में अकसर मक्की के आटे के सीड़ू ही बनाते हैं। पतीले में दाल पकने के लिए रखी जाती है। दाल के पकने पर जब इसमें नमक हल्दी इत्यादि डालना होता है, उसी समय मक्की के आटे को गूंथ कर उसके लड्डू सदृश पेड़े बनाकर उन्हें दाल के पतीले में डाला जाता है और दाल को 30 मिनट से लेकर एक घण्टे तक धीमी आंच में पकाया जाता है। उसके बाद पतीले को चूल्हे पर से उतार कर ठण्डा होने पर दाल-सीड़ू को खाया जाता है।

आक्सलू

आक्सलू एक स्वादिष्ट पकवान है जिसे लोहड़ी तथा फागली के अवसर पर बनाया जाता है। यह चावल के आटे से तैयार किया जाता है। चावल के आटे में मलेड़ा या यीस्ट डाल कर उससे पतला घोल तैयार किया जाता है। दो घण्टे तक घोल को परात में पड़ा रहने दिया जाता है। तत्पश्चात् चूल्हे पर चढ़ाये हुए गर्म पत्थर जिसमें कटोरीनुमा खोल बने होते हैं, में उस गाढ़े आटे के घोल को डाला जाता है। इस समय इसमें नमक तथा पांच -सात भांग के दाने भी डाले जाते हैं। कुछ देर रखने के बाद पत्थर के सांचे से इन्हें बाहर निकाला जाता है और चूल्हे पर कोयले के ऊपर रखा जाता है, जहां ये पककर तैयार हो जाते है। इन्हें दाल, चटनी, शहद इत्यादि के साथ खाया जाता है।

चिल्हड़े

चिल्हड़ा यहां का एक पारम्पारिक भोजन है। यह पकवान देवता को प्रसाद चढ़ाने में भी काम आता है तथा पेट का हाज़मा ठीक करने में भी। एक समय था जब गेहूं की पैदावार बहुत कम होती थी। यहां केवल जौ और मक्की की खेती ही मुख्य रूप से होती थी। मई में जौ पकने के बाद अक्तूबर व नवम्बर में मक्की की फसल आने तक जौ के चिल्हड़े ही खाये जाते थे। जौ आसानी से पचता है। शरीर को पौष्टिकता प्रदान करता है।

चिल्हडे कई प्रकार से बनाये जाते हैं। देवता की पूजा में अर्पित करने के लिए गेहूं के चिल्हड़े बनाये जाते हैं। इन्हें बनाने के लिए आटे को पानी में

भिगोकर हाथ से काफी देर तक हिलाया जाता है। मीठे के लिए इसमें गुड़ डाला जाता है। जब यह घोल गाढ़ा हो जाता है तब इसे कटोरी से चूल्हे पर चढाये गर्म तवे पर फैलाया जाता है। एक ओर से पकने पर इसे दूसरी तरफ पलटा जाता है। पकने पर यह दोनों तरफ से लाल रंग का हो जाता है। देवता को चढ़ाने वाले चिल्हड़ आकार में छोटे बनाए जाते हैं।

जौ के बनाये हुए चिल्हड़ू बड़े आकार के होते हैं। इन्हें बनाने के लिए आटे के घोल को दो घण्टे पूर्व खमीर डालकर घोला जाता है। तत्पश्चात् तवे पर कटोरी से फैलाया जाता है और दोनों ओर से सेंका जाता है। चिल्हड़ू बनाने से पूर्व तवे की सतह पर घी का लेप लगाना पड़ता है अन्यथा चिल्हड़ू तवे पर ही चिपक जाते हैं। इन्हें लस्सी, दाल, दूध तथा घी के साथ खाया जाता है।

बबरू

माघ तथा आश्विन की संक्रांति को कुल्लू के सभी गांवों में मीठा पकवान बनाने की परम्परा है। यह पकवान लोहड़ी की शाम को बनाया जाता है तथा अपनी ब्याही हुई बेटी, बुआ, बहन आदि को उसके ससुराल भेजा जाता है। इस क्रिया को *माघ पजेरना* भी कहते हैं।

बबरू गेहूं के आटे के बनाये जाते हैं। गेहूं के आटे को मलेड़े या यीस्ट के साथ मिलाकर गुड़ के घोल में फेंटा जाता है। जब आटा खमीरा हो जाता है तब उसमें अखरोट, गरी, किशमिश तथा मीठी सौंफ आदि डाली जाती है। उसके बाद परात में घोले हुए आटे के छोटे-छोटे टुकड़े गर्म तेल में तले जाते हैं। बबरू को चाय दूध के साथ खाया जाता है।

बौड़े

बौड़े माघ मास में बनाये व खाये जाते हैं। इसको बनाने के लिए सबसे पहले देशी माश को 12 घण्टे तक पानी में भिगोया जाता है। 12 घण्टे के बाद माश को शिल्ह पर वते द्वारा पीसा जाता है। पीसने के बाद आटे की तरह गूंथा जाता है। तत्पश्चात् गूंथे माश की छोटी–छोटी रोटियां बनाई जाती हैं। इन रोटियों के बीच में अंगुली से छेद डाला जाता है। उसके बाद इन्हें कड़ाही में उबलते हुए तेल में पकाया जाता है। पकाने के बाद स्वादानुसार नमक डाला जाता है। नमक बड़े के अन्दर तक जाये इसके लिए एक कांसे की थाली में नमक का घोल बनाया जाता है और बड़ों को एक-एक करके इस घोल में

डुबोया जाता है। कई बार माश पीसते वक्त ही नमक तथा मिर्च आदि मिलाये जाते हैं।

रोटी

यहां गेहूं, जौ, मक्की, कोदरे, खनोर, काठू तथा चावल के आटे की रोटियां पका कर खाने का रिवाज़ रहा है। मक्की को स्थानीय बोली में छल्ली कहते हैं, इसलिए छल्ली की रोटी खाने का यहां आम प्रचलन है। नवम्बर -दिसम्बर में छल्ली पक कर तैयार हो जाती है। शीत ऋतु में छल्ली के आटे की रोटियां बड़ी स्वादिष्ट लगती हैं। छल्ली के आटे को पानी के साथ खूब मसलने के बाद पेड़ा बनाकर दोनों हाथों के बीच दबाकर फैलाया जाता है। तत्पश्चात् गर्म तवे पर रखा जाता है। दोनों तरफ पलटने के बाद चूल्हे में जलती लकड़ी व कोयले की आंच पर इन्हें सेंका जाता है और राजमाश, माश, आलू की कढ़ी, लस्सी, दूध, घी के साथ खाया जाता है। मक्की की रोटी के बारे में कुल्लुवी लोकगीतों में बड़ा सुन्दर वर्णन हुआ है–

छौल्ली री रोटी शागै री भाज़ी
जुण खाला सौ रौहला सदा ऐ राज़ी
छौल्ली री रोटी बाली री दाल़
खान्दै रौहा सारी साल
छौल्ली री रोटी माह री दाल़
कधी नई बरछयाउन्दै
खा चाहै दोत ब्याल।

आज से बीस–पच्चीस बर्ष पहले यहां के अधिकांश गांवों में कोदरे की खेती होती थी। कोदरा एक ऐसा अन्न है, सालों रखने के बाद भी जिसमें कीड़े नहीं लगते। इसलिए लोग आपात काल के लिए कोदरे को दारठे या कोठार में बचाकर सालों तक रखते थे, ताकि सूखे या अकाल की स्थिति में काम आ सके। कोदरे की रोटी स्वादिष्ट होने के साथ हज़म भी बड़ी आसानी से होती है। कोदरे के बारे में एक कहावत बड़ी मशहूर है–

कोणकी चाउल़ा रै लुगलुगांदै
काठू कोदरा रै कटकटान्दै।

अर्थात् गेहूं और चावल खाने वाले कमज़ोर शरीर के होते हैं, जबकि काठू और कोदरे की रोटी खाने वाले हट्टे-कट्टे होते हैं। कोदरे की रोटी भी मक्की की रोटी की तरह ही पकाई जाती है।

उझी घाटी के अधिकांश गांवों के पास के जंगलों में खनोर के पेड़ हैं।

इनका आकार अखरोट के पेड़ की तरह बड़ा होता है। इन पर घने फल लगते हैं। इनका छिलका काले रंग का होता है, गिरी का रंग सफेद भूरा सा होता है। जब यह फल पक जाता है, तो अपने आप धरती पर गिरने लगता है। लोग इन्हें किलटे में उठाकर बावड़ी या चश्मे के पास ले जाते हैं। वहां पानी से अच्छी प्रकार धोने के पश्चात् इन्हें डण्डे से कूटकर पानी में रखा जाता है। पानी में चार-पांच दिन तक रखने के बाद इसकी कड़वाहट समाप्त हो जाती है, फिर गिरियों को सुखाने के बाद चक्की में पीसा जाता है और मक्की या कोदरे के आटे के साथ मिलाकर इसकी रोटी बनाई जाती है। इन रोटियों को *'जमोले'* कहते हैं।

गेहूं की रोटी कई प्रकार से बनाई जाती है, जिसमें चपाती, रोट, दनोली, शोटरे, सुहाले, भटुरू, इत्यादि प्रमुख हैं। चपाती को आम फुलके की तरह बनाया जाता है जबकि दनोली दो आरियों को एक साथ पकाने पर बनती हैं। दनोली देवता को भोग प्रसाद चढ़ाने में काम आती है। रोट बड़ी मोटी रोटी होती है। इसको बनाने के लिए आटा गूंथने में जो पानी प्रयोग होता है, उसमें गुड़ मिलाया जाता है, ताकि रोट का स्वाद मीठा हो। रोट प्रायः बड़े देवता गारसिंह को चढ़ाया जाता है। परन्तु इसका प्रसाद महिलाओं को नहीं खिलाया जाता। ऐसा माना जाता है कि महिलाओं को खिलाने से बड़ा देवता उन पर आसक्त हो जाता है। शोटरा भी रोट की तरह ही होता है। रोट में गुड़ का प्रयोग होता है जबकि शोटरे में बेढ़न डाला जाता है। बेढ़न में अखरोट, माश, तिल इत्यादि का प्रयोग होता है। शोटरा केवल बैसाख की संक्रांति से दो दिन पूर्व बनाये जाते हैं और अगले दिन ग्वाले तथा फुआल इन्हें भेड़-बकरियां तथा ढोर-डंगर चराते समय अपने साथ ले जाते हैं। वहां सभी इन्हें मिल-बांटकर खाते हैं।

भटूरू बनाने के लिए गेहूं के आटे को खमीर डालकर दो घण्टे पहले गूंथा जाता है। तत्पश्चात् गोल-गोल पेड़ों को बेलकर ऊनी दोहड़ पर रखा जाता है और फिर तवे पर दोनों तरफ से पलटकर अंगारों पर पकाया जाता है। इसे सजेली रोटी भी कहते हैं। जब भटूरू के अन्दर बेढ़न डाला जाता है तब इसे बेढुई रोटी कहते है। भटूरू की क्रिया में ही जब रोटी को तवे पर न पकाकर तेल में पकाया जाता है तब इसे सुहाले कहते हैं। सुहाले में बीच में तिल, अखरोट, माश या सोयाबीन का बेढ़न भी डाला जाता है। सुहाले भादों की संक्रांति को पकाये जाते हैं।

गीचे

ऊझी घाटी में दियाली तथा फागली के अवसर पर गीचे बनाये जाते हैं। इन्हें बनाने के लिए पहले चावल को पीसकर उसका आटा बनाया जाता है। आटे को परात में गर्म पानी से लेटी की तरह गूंथा जाता है। तत्पश्चात् धीमी आंच में तवे पर इसे पकाया जाता है। फिर ठण्डा होने पर हाथ में देसी घी लगाकर उसकी गोल-गोल गोलियां बनाई जाती हैं। एक अन्य बर्तन में चीनी या गुड़ की चासनी तैयार की जाती है। इन गोलियों को चासनी में डाला जाता है। यदि दूध वाले गीचे बनाने हों तो दूध में चीनी डालकर उबाल लेते हैं फिर उसमें गोलियां डाल दी जाती हैं।

दाल-सब्जियां

दालों में राजमाश, माश, चने, मूंग, मसर आदि दालें प्रमुख हैं। जबकि सब्ज़ियों में फैंफरा, काठू, साग, कद्दू, घेरी, लिंगड़, पतरोड़ू, ज़ाम्बले, ज़राउला इत्यादि प्रमुख हैं। फैंफरा जंगली जाति का पौधा है, जो पीपल के पत्तों की तरह हरा होता है। यह जून में उगता है और जुलाई अगस्त में सब्ज़ी के लिए तैयार हो जाता है। इसे दराटी से छोटे-छोटे टुकड़ों में काटकर स्वादानुसार नमक तथा हल्दी डालकर कड़ाही में उबाला जाता है। यह आधे-पौने घण्टे में पक कर तैयार हो जाता है। पकने के बाद हाथों में दबाकर इसका सारा पानी निचोड़ा जाता है और प्याज़, टमाटर, धनियां, मिर्च आदि से तड़का लगाया जाता है। इसकी सब्ज़ी खाने में खट्टी होती है। इसे अधिक मात्रा में नहीं खाया जाता क्योंकि इसके सेवन से शरीर के अंगों में झनझनाहट होती है। फैंफरा की जाति की ही एक सब्ज़ी है काठू। काठू खेतों में उगाई जाती है। इसकी सब्ज़ी बनाने की विधि फैंफरे की सब्ज़ी की तरह ही है।

गेहूं बीजते समय उसमें साग भी बीजा जाता है। जब गेहूं उगते हैं, तब उनके बीच साग भी निकल आता है। जनवरी-फरवरी तक साग काटने योग्य हो जाता है। इसकी सब्ज़ी फैंफरे या काठू की तरह ही बनाई जाती है।

यहां के नदी नालों के आसपास एक जंगली सब्जी सावन-भादों के मौसम में बहुतायत में उगती है। इस सब्ज़ी को लिंगड़ कहते है। लिंगड़ की सब्जी स्वादिष्ट होती है। इसका अचार भी बनता है। इसकी सब्जी बनाने के लिए लिंगड़ के छोटे-छोटे टुकड़े करके उन्हें कड़ाही में पकाया जाता है। उसी समय नमक हल्दी भी डाली जाती है। पानी कम डाला जाता है ताकि पकने पर पानी सूख जाये। पक जाने के बाद इसमें तड़का लगाया जाता है।

कद्दू और घेरी के बीजों को अप्रैल-मई में बीजा जाता है, जो बरसात

तक बड़ी बेल के रूप में पनपती है। इस बेल में कदू और घेरी पैदा होते हैं। कद्दू का आकार गोल होता है, जबकि घेरी लम्बोतरी होती है। घेरी जब छोटी होती है और इसका छिलका कोमल होता है, तब इसकी सब्जी स्वादिष्ट बनती है। इसी तरह कदू की सब्ज़ी भी स्वाद होती है। इनकी सब्ज़ी पकाते समय पानी नहीं डाला जाता। क्योंकि इनमें पर्याप्त मात्रा में पानी निकलता है। इनके छोटे-छोटे टुकड़े करके कड़ाही में पकाया जाता है। तत्पश्चात् तड़का लगाया जाता है। कद्दू और घेरी का आकार जब बड़ा होता है, तब इनका छिलका सख़्त हो जाता है। तब इन्हें सर्दियों के लिए रखा जाता है। सर्दियों में इनके छोटे टुकड़े करके बड़े पतीले में पानी डालकर उसके ऊपर धान की पराली डालकर भाप से पकाया जाता है। फिर चाय या रोटी के साथ इनको खाया जाता है। कई बार पके हुए इन टुकड़ों की सब्जी भी बनाई जाती है। विवाह शादी में कद्दू का मीठा बनाया जाता है।

जराउला

घेरी के टुकड़ों को पकाने के बाद कई बार इसके छोटे-छोटे टुकड़ों को राई, नमक, मिर्च सहित लस्सी में मिलाया जाता है और मक्की की रोटी के साथ खाया जाता है। इसे ज़राउला कहते हैं।

पतरोडू

कचालू को देसी आलू भी कहा जाता है। इनके पत्ते लगभग एक फुट व्यास के होते हैं। इन पत्तों के बीच में बेसन या मक्की का गुंथा हुआ आटा डाला जाता है। चार छः पतों का एक गटठा बनाकर उसे पतीले में भाप से पकाया जाता है। बाद में रोटी के साथ खाया जाता है। कभी–कभी इसको तलकर भी खाया जाता है। पतरोडू की तरह देसी आलू के डंठल में भी बेसन व मसाला इत्यादि डालकर तल कर बनाया जाता है।

जाम्बले

पुराने ज़माने में राजमाश की खेती अधिक होती थी। इसलिए कभी-कभी राजमाश के दानों को पकाकर उसमें नमक मिर्च डालकर खाया जाता था। इस भोज्य पदार्थ को जाम्बले कहा जाता था।

गलचोपा

यह खूबानी की गिरी से बनी चटनी है।

यहां एक कहावत प्रसिद्व है:–

खाणे बै स्वाद उझी रै शाढ़ै

गलचोपा खाणा ता गुटी बै फाड़ै।

शाढ़ै अर्थात् खुबानी की गुठली दो प्रकार की होती है। एक का स्वाद मीठा होता है तथा दूसरे का स्वाद कड़वा होता है। गलचोपा कड़वी और मीठी दोनों प्रकार की गुठलियों से बनता है। मीठी गुटी को एक बार पीस कर उसमें नमक मिर्च डालकर तैयार किया जाता है। जबकि कड़वी गुटी को कई बार पीसना पड़ता है। जितना ज्यादा इसको पीसेंगे उसमें उतना ही स्वाद आता जाएगा और कड़वापन भी समाप्त हो जाएगा। इसमें थोड़ी चीनी या थोड़ा सा नमक डालकर चटनी तैयार करके रोटी के साथ खाया जाता है।

फैंबड़ा

कुछ बर्ष पूर्व तक फैंबड़ा यहां का लोकप्रिय भोज्य पदार्थ रहा है। फैंबड़ा एक ऐसा भोजन रहा है जो पौष्टिक होने के साथ-साथ हज़म भी शीघ्र होता है। हालांकि आजकल इसका प्रचलन थोड़ा कम हो गया है, परन्तु स्वास्थ्य की दृष्टि से आज भी इसकी महता बरकरार है। फैंबड़े की तासीर गर्म होती है, इसीलिए इसे सर्दियों में अधिक खाया जाता है। इसको खाने के बाद जल्दी भूख लगती है, जिसका वर्णन एक लोकगीत में इस प्रकार हुआ है-

नई जाणा शोहरीऐ बोधू धोणी रै कोमा हो

पतला फैंबड़ा ध्याड़ा सिकला लोमा हो।

फैंबड़ा सरियारा, काऊणी, मक्की, चावल, कोहल, सोयाबीन इत्यादि का बनता है। इनका अलग-अलग फैंबड़ा भी बनता है और इकट्ठा भी। इसको बनाने के लिए सबसे पहले पतीले में पानी डालकर उसमें आवश्यकतानुसार इन्हें डाला जाता है। अगर सभी चीज़ों का मिश्रित फैंबड़ा बनाना हो तो ये सभी चीज़ें इच्छानुसार कम या ज्यादा मात्रा में डाली जाती हैं। इनको पानी में तब तक उबाला जाता है जब तक ये सब पक न जायें। पकने पर इनमें मक्की के आटे का घोल व नमक मिलाया जाता है। इसके बाद इसे आधे घण्टे तक धीमी आंच में उबाला जाता है। घोल के गाढ़ा होने पर पतीले को आग पर से उतारा जाता है, और ठण्डा होने पर सूप की तरह पीया जाता है। कई बार यह सब्जी का भी काम देता है।

सूर-चाकटी

पुराने समय में सूर-चाकटी का प्रचलन अधिक था। आजकल कोदरे की खेती कम होने के कारण सूर का बनना भी कम हो गया है। चावल की

चाकटी अभी भी बनाई जाती है। विवाह-शादी हो या मेला-त्योहार, इन सभी खुशी के मौकों पर सूर का सेवन सभी स्त्री-पुरुष करते रहे हैं। जब कोई व्यक्ति मेहमान् आ जाता था तो उसकी आवभगत सूर पिलाकर की जाती थी। इसकी पुष्टि कुल्लुवी लोकोक्तियों में इस प्रकार हुई है—

घीउ खाणा बले री तैईयें
सूर पीणा गले री तैईयें।

इसमें विशेष प्रकार का नशा होता है, जो ताकत के साथ-साथ शरीर को उर्जा भी देता है।

सूर बनाने के लिए कोदरे के आटे को किसी खुले अथवा बड़े बर्तन में डालकर पानी मिलाकर लगभग एक मास तक रखा जाता है। जब वह पूरी तरह सड़ जाता है तो उसके चिल्हड़े बनाकर तवे पर पकाये जाते हैं। उसके बाद उन चिल्हड़ों के टुकड़े-टुकड़े करके जौ की ढेली में मिलाकर बड़े से मिट्टी के घड़े में डाला जाता है। जौ की ढेली बनाने के लिए जौ के आटे को अच्छी तरह गूंथ कर उसमें राई, रिंगल या मधुमक्खी के छत्तों के टुकड़ों को डाला जाता है। फिर उस गुंथे हुए आटे को ईंटों की तरह बनाया जाता है जिसे कई दिनों तक चूल्हे के ऊपर रखे फट्टे के ऊपर रखा जाता है। दो या तीन मास में ये चूल्हे की जली आंच से सूख जाती हैं। तब उस ढेली को घड़े में डालकर उसके मुंह को चिकनी मिट्टी या जौ के गुंथे हुए आटे से बन्द किया जाता है ताकि उसमें हवा न जा सके। दस पंद्रह दिनों के बाद उसका मुंह खोला जाता है फिर सूर को छानकर प्रयोग में लाया जाता है। कई बार उसका मुंह खोलने के लिये देवता के गूर को बुलाया जाता है। वह धूप-दीप जलाकर सूर को देवता को समर्पित करता है। तत्पश्चात् स्वयं उसको चख करने के बाद दूसरों को देता है।

लुगड़ू

प्रसूता होने के बाद पांच छः मास तक शिशु को मां का दूध पिलाया जाता है। इसके बाद धीरे-धीरे उसे गुड़ का गुड़ाणी पिलाया जाता है। जिसे लुगड़ू कहते हैं।

रेढू

अधिकतर गांव व्यास और उसकी सहायक खड्डों के किनारे अवस्थित हैं। नदी-नालों के किनारे सिंचाई वाले खेत हैं, जिन्हें रोपे कहा जाता है। इन रोपों में धान की रोपाई की जाती है। हालांकि कुछ समय से धान के स्थान

पर सेब के पौधे लगने शुरू हो गये हैं फिर भी कहीं–कहीं इन रोपों में अब भी धान की खेती की जाती है। धान की रोपाई करने को *रूहणी* कहते है। रूहणी करते वक्त रोपे में एक विशेष पकवान बनाकर खाया जाता है जिसे रेढ़ू कहा जाता है। रेढ़ू एक तरल पदार्थ है, जिसमें चावल को मोटे पीसे सोयाबीन के साथ पतीले में पकाया जाता है। जब चावल पक जाते हैं तब उसमें दही या खट्टी लस्सी के साथ छौंका लगाया जाता है और फिर उसे देर तक पकाया जाता है। इसके बाद रूहणी करने वालों को यह पेय खिलाया जाता है। माना जाता है कि इसके पीने से रूहणी करने वालों को पानी और कीचड़ में लगातार रहने से बुरा प्रभाव नहीं पड़ता। शरीर सड़न रोग से बच जाता है। यह सूर की तरह थोड़ा नशा देता है, इसलिए यह शरीर को हरारत भी देता है और ठण्ड से बचाये भी रखता हैं। इन पकवानों में से अधिकांश अब प्रचलन में नहीं है। फिर भी उम्मीद रखनी चाहिए कि भविष्य में इन की महत्ता को देखते हुए इनका दोबारा प्रचलन आरम्भ हो।

षष्ठ अध्याय

आर्थिक स्थिति

मनाली में पौष, माघ और फाल्गुन के महीनों में सर्वाधिक ठण्ड रहती है और इन्हीं दिनों में बर्फ पड़ती है। यहां लगभग एक से चार फुट बर्फ पड़ती है। बर्फ के बारे में कहावत है– *पोषा रा हिऊं लोहा, माघा रा हिऊं गोहा, फागणा रा हिऊं पोहा।* अर्थात् यदि पौष महीने में बर्फ पड़ जाये तो वह जल्दी नहीं पिघलती, जमकर लोहे की तरह कठोर हो जाती है और गर्मियों में अच्छी फसल देती है। माघ महीने की बर्फ गोबर की तरह होती है, यह गेहूं-जौ की फसल के लिए अच्छी होती है और फाल्गुन महीने की बर्फ फोहे अर्थात् रूई की तरह होती है यानी बर्फ गिरती है, पिघलती है और हिमनद बनकर मैदानों को पानी से सराबोर करती है। बर्फ ने ही यहां की मिट्टी को उर्वरा बनाकर सेब के पेड़ उगाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

कृषि

कठोर भूपटल को ऊपर से ढके हुए असंगठित शैल चूर्ण जिसकी अपनी भौतिक, रासायनिक और जैविक विशेषताएं होती हैं, को मिट्टी कहते हैं। मिट्टी में दो प्रकार के पदार्थ पाये जाते हैं, एक तो वे खनिज पदार्थ जो मूल चट्टानों में उपस्थित रहते हैं, जैसे-नाईट्रोजन, पोटाशियम, गंधक, फास्फोरस, चूना, तांबा, लोहा इत्यादि। दूसरे, पौधों और जानवरों का गला सड़ा अंश। इसे ह्यूमस (प्राकृतिक खाद) कहते हैं। ह्यूमस मिट्टी में नमी बनाये रखता है, जिससे अनेक कीड़े-मकोड़े जन्म लेते हैं। ये पौधों के विकास के लिए आवश्यक होते हैं। मनाली के अधिकांश गावों में चिकनी-दोमट मिट्टी मिलती है, जो सेब, पलम आदि फलों तथा धान आदि फसलों के लिए उपयोगी है। यहां पर खड्डों और नालों के किनारे वाले खेत सबसे अधिक उपजाऊ हैं। अनाजों में यहां जाटू धान, मताली, कोदरा, सलियारा, काठू, काऊणी, चीणी, जिंझण, भेसा, मक्की, जौ, और दालों में राजमाष, माश, चने, मसर, रोंगी, सोयाबीन तथा सब्जियों में आलू, गोभी, टमाटर, बैंगन, भिंडी, काठू, फेंफरा, साग, पालक, गाजर, मूली, घीया, कद्दू, घेरी, करेले, शिमला मिर्च और मसालों

में लहसुन, प्याज़, धनियां, मिर्च, सौंफ, पुदीना, हल्दी आदि की पैदावार होती है। यहां के जंगलों में गुच्छी, कनिफड्डू, ल्हेसरी, बुका, छौछी, तोगड़, भान्दलू, मटोशै, क्याऊं, लिंगड़ी, शूश, बरथैवा, झरका, बिथू आदि प्राकृतिक बूटियां पैदा होती हैं। 1991 की जनगणना के अनुसार मनाली की सभी कोठियों में 15286 एकड़ ज़मीन पर कृषि व बागवानी होती थी। इसी जनगणना के अनुसार कुल्लू ज़िला के नग्गर ब्लाक में 65 प्राईवेट और 1454 सरकारी कूहलों (कुल्यों) से सिंचाई की सबसे अधिक सुविधा उपलब्ध थी। इस कारण ही यहां की भूमि सोना उगलती है।

बागवानी

मनाली वासियों की आर्थिक स्थिति सेब के बागीचों पर सबसे अधिक निर्भर करती है। हिमाचल प्रदेश में सेब का पौधा सबसे पहले कुल्लू घाटी में ही लगा था। आम धारणा है कि सन् 1918 के आस-पास सेमुअल इवांस स्टोक्स नामक एक ईसाई पादरी ने अमेरिका से सेब की डिलिशियस जाति के पौधे मंगवा कर कोटगढ़ क्षेत्र में लगाये थे, परन्तु बहुत कम लोगों को ज्ञात है कि इससे आधी सदी पहले सन् 1868 के आसपास कुल्लू के बन्दरोल नामक गांव में एक अंग्रेज़ सैनिक कैप्टन आर.सी.ली. ने सेब का बाग लगाया था, जो आज भी मौजूद है। उसने अपने देश इंग्लैण्ड के डेवनशायर से सेब, चैरी, प्लम, और नाशपाती के बीज व पौधे मंगवाए, जिन्हें उसने यहां 250 बीघा ज़मीन खरीद कर लगाया। सन् 1870 तक उसके बागीचे में सेब की स्टुएर्ड, ग्रेनी स्मिथ, विंटर, वाईन एप्पल, मेरी लुईस, न्युट्रन व आल्डविन जैसी किस्में फल देने लगी थीं। इसी तरह नाशपाती की फेवरिट व डेनी-डयु किस्मों में फल आये थे। कैप्टन आर.सी.ली. के मित्रों में से ए.टी. बैनन ने मनाली, कर्नल टैनिक व मिन्नीकन ने बजौरा, हेनरी डोनाल्ड ने डोभी में सेब के बागीचे लगाए थे। उनकी देखा-देखी सेऊबाग के पाधा बंसी लाल ने भी एक बागीचा लगाया। सेब के बागीचे लगने के कारण ही यहां का नाम सेऊबाग पड़ा।

सन् 1960-61 में पंजाब के तत्कालीन मुख्यमंत्री सरदार प्रताप सिंह कैरो ने मनाली में एक जनसभा में लोगों को सेब उगाने के लिए प्रेरित किया था। जब लोगों ने सवाल पूछा, 'अगर हम सेब के पौधे लगायेंगे तो हम खायेंगे क्या?' इस पर उन्होंने कहा था कि वे एक वर्ष के लिए यहां के लोगों को पंजाब से अनाज लाकर सबसिडी पर देंगे। तब स्व. लाल चन्द प्रार्थी जो उस समय विधायक थे, ने सरदार जी से कहा था कि सेब की फसल तो दस साल में

तैयार होगी इसलिए दस साल तक इन्हें सबसिडी पर अनाज देने की व्यवस्था करें। उनके आग्रह पर सरदार प्रताप सिंह कैरो ने दस साल तक सबसिडी पर अन्न देने की घोषणा की थी। उन्होंने इस मौके पर लोगों को मुफ्त में सेब के पौधे भी दिए थे। शुरू में कम ही लोगों ने सेब के पौधे लगाये। जब लोगों ने देखा कि इससे अच्छी आय हो रही है तो धीरे-धीरे सभी लोगों ने धान के क्यार के अलावा हर खेत में सेब के पौधे लगाने आरम्भ किए। अब तो धान के क्यार में भी लोगों ने सेब के बागीचे लगाये हैं, जिससे यहां की आर्थिकी में एकदम बढ़ौतरी हुई है।

यहां पर सेब की कई किस्में उगाई जाती हैं, जिनमें रॉयल, रिचरेड और गोल्डन प्रमुख हैं। इसके अलावा प्रजनन के लिए जनाथन, काली देवी आदि प्रजातियां भी लगाई जाती हैं। प्लम की सेंटारोज़ा प्रमुख प्रजाति है। इसके अलावा बागवानों द्वारा नाशपाती, अखरोट, आड़ू, खूबानी, जापानी, चैरी आदि फल भी इस क्षेत्र में उगाये गये हैं। यह हिमाचल का एक मात्र क्षेत्र है, जिसमें सबसे अधिक प्रकार के फलों के पौधे उगाये जाते हैं।

पशुपालन

मनाली क्षेत्र में लगभग हर घर में गाय बैल आदि पशु पाले जाते हैं। दूध, दही, लस्सी, घी, मक्खन आदि घर में ही होता है। मनाली बाज़ार में मनाली, पलचान बुरुआ, कोठी, जगतसुख, अलेऊ, शुरू, प्रीणी, सियाल, कन्याल, छियाल आदि गांवों से दूध बिकने को आता है। लोगों ने देसी गाय के साथ जर्सी गाय भी पाल रखी हैं। इन गांवों में कोई भी मेहमान घर में आ जाये तो उसे जाटू धान का भात तथा दाल के साथ घी परोसने की परम्परा है। मनाली, बुरुआ, शनाग, कोठी, पलचान आदि गांवों के बहुत से लोगों ने भेड़-बकरियां पाल रखी हैं।

पूर्व समय में कुल्लू जब शेष विश्व से कटा रहता था उस समय यहां के लोग इन्हीं से परिवार के कपड़ों की ज़रूरत पूरी करते थे। दूसरा इससे आमदनी भी होती थी। मनाली के आसपास की अनेक चरागाहों में नीरू आदि पौष्टिक घास पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होता है, जिस कारण भेड़ पालने में पुहालों को कोई दिक्कत नहीं आती। लोगों ने घरेलू पशुओं में बैल, भेड़-बकरी, भैंस, कुत्ता, बिल्ली, घोड़ा, खच्चर, गधा, सूअर आदि पाले होते हैं। पशुओं को बीमारियों से बचाने के लिए मनाली तथा पतलीकूहल में पशु चिकित्सालय हैं। हर पंचायत में पशु औषधालय हैं, जिनमें लोग अपनी गायों व भेड़ों का इलाज कराते हैं।

जड़ी बूटियां

मनाली के आसपास की चरागाहों में उपलब्ध वनस्पतियां, वनौषधियां और जड़ी-बूटियां यहां की अमूल्य निधि है। किसी समय ये स्थानीय लोगों की रोज़ी-रोटी और व्यापारियों व ठेकेदारों के लिए कमाई का साधन रही हैं। यहां बनफ्शा, गुच्छियां, शिंगली-मिंगली, मिंगुई (अतीस), कुटकी, सालमपंजा, टुंबलमुंही, गुग्गुल, बेठर, बणककड़ी, दारूहल्दी, सुगंधवाला, घुघती फूल, पिरपिरी, कटारी, जौभ, काकड़ासींगी, टिंबर, बणमेथी, कलौंटी, नीलकंठी, बणजुआणे, मंजीठ, ममीरा, बकरसिंगी, शठजलाड़ी, अतिविषा, दुधला माहुरा आदि कई प्रकार की जुड़ी-बूटियां मिलती हैं। *बनफ्शा* हल्के जामुनी रंग का छोटा फूल है, जिसे सुखा कर रखा जाता है। सर्दियों में इसका काढ़ा पीने से यह जुकाम से बचाता है। *गुच्छियां* कुकुमुत्ते की एक किस्म है जो चैत्र, बैसाख में बादलों की गर्जन से जगलों में स्वयं उगती हैं। इसका काढ़ा भी सर्दी, जुकाम और खांसी में बहुत उपयोगी होता है। *शिंगली-मिंगली* का वानस्पतिक नाम डायोकस्कोरिया डेल्टोइडा है। यह झाड़ियों के पास उगने वाली बेल है, जिसमें दूर-दूर पत्ते लगते हैं। इसकी जड़ें कपड़े विशेषकर ऊनी वस्त्र धोने के लिए प्रयुक्त होती हैं। *मिंगुई* दो तरह की होती है। एक झाड़ीनुमा, जिसका पौधा लगभग दो फुट ऊंचा होता है। इसकी जड़ों को पीसकर सख्त फोड़े पर लगाने से फोड़ा फट जाता है। दूसरे में सफेद और नीले रंग के छोटे फूल लगते हैं। यह बवासीर की औषधि है। *बेठर* लगभग दो फुट ऊंचा पौधा है, जिसमें सफेद रंग के फूल लगते हैं। यह एक जड़ी धूप है। *पिरपिरी* कीटनाशक जड़ी है, जो पिस्सू, खटमल आदि का नाश करती है। *जौभ* को वेदों में दर्भ कहा गया है। यह मन को शांत करने वाली वनस्पति है। *बणमेथी* मसाले के रूप में प्रयुक्त होती है। *कलौंटी* के पत्तों को कूटकर सारा दिन पानी में रखने के बाद प्रातः पीने से स्त्रियों का धातु रोग और अधिक मासिक स्राव ठीक हो जाता है। *नीलकंठी* की नीले रंग की पत्तियों से फोड़े-फुंसियां तथा धातु रोग खत्म हो जाता है। *बणजुआणे* खांसी, बुखार, अतिसार तथा पेट दर्द में काम आती है। *मंजीठ* का वानस्पतिक नाम रुबिया कौर्डियाफोलिया है। इसकी बेल को बारीक पीस कर चर्मरोग पर लगाने से रोग ठीक हो जाता है। *ममीरा* दांत दर्द की दवा है। इसकी जड़ को दांत के खोल में डालने से दर्द दूर हो जाता है। *बकरसिंगी* का पौधा सीधा होता है, जिसके शीर्ष पर बकरे के सींग की तरह मरोड़दार और तिरछा फूल लगता है। यह भूख बढ़ाता है, बदहज़मी दूर करता है।

शठजलाडी में सफेद फूल, चौड़े पत्ते लगते हैं। इसमें साठ अर्थात् अनेकों गुच्छेदार जड़ें होती हैं। यह दमे की बीमारी की अचूक दवाई है। *अतिविषा* का पौधा 2700 मीटर से 3600मीटर की ऊंचाई पर उगता है। यह अपने आसपास के घास, पौधों को जला देता है। विष का दूसरा रूप दुधलू माहुरा है। इसे *मीठा माहुरा* या *मीठा विष* भी कहते हैं। इसके पत्तों, जड़ों तथा शाखाओं से दुधिया रस निकलता है।

हालांकि यहां की चरागाहों तथा वनों में असंख्य जड़ी-बूटियां पाई जाती हैं, परन्तु बहुत कम लोगों को इनकी जानकारी है, इसलिए लोग सरकारी स्वास्थ्य चिकित्सालयों में अपना इलाज कराते हैं। आजकल मनाली में सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र तथा नग्गर, ब्राण, जगतसुख में प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र तथा 22 स्वास्थ्य उपकेन्द्र हैं।

पर्यटन

बागवानी और कृषि के अलावा मनाली की आर्थिकी में पर्यटन महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। यहां के अधिकांश लोग पर्यटन व्यवसाय से जुड़े हुए हैं। कइयों के होटल हैं तो कई टैक्सी, टुरिस्ट एजेंसी चलाते हैं। बहुत से नौजवान गाईड बनकर ट्रैकिंग से अच्छी खासी कमाई कर रहे हैं। स्की, पैराग्लाइडिंग, पर्वतारोहण से भी बहुत से युवा जुड़े हुए हैं। पर्यटकों को फोटो खिंचवाने के लिए कुल्लुई पट्टू पहनाकर महिलायें अच्छी कमाई कर लेती हैं। मनाली में हिमाचल प्रदेश सरकार के पर्यटन विभाग के साथ 624 होटल, 683 ट्रैबल एजेंट, 354 आऊटडोर फोटोग्राफर, 132 गाईड, 68 रैस्टोरेंट, 187 होम स्टे हाऊस पंजीकृत हैं।

पर्यटन को बढ़ावा देने में फिल्मों का योगदान भी कम नहीं है। गीत, एक फूल दो माली, सौदागर, कर्मा, पत्थर के सनम, पराया धन, महबूबा, थ्री इडियट, माया मेम साहब, जवानी दीवानी आदि असंख्य फिल्मों ने पर्यटकों को मनाली आने के लिए प्रेरित किया है।

पर्यटन व्यवसाय में साहसिक खेलों का योगदान

मनाली के आसपास की चोटियां, चरागाहें, ढलानें और नदी-नाले पर्यटन के लिए बेहद उपयुक्त हैं। इस क्षेत्र के ये प्राकृतिक स्थल साहसिक खेलों के लिए पर्यटकों विशेषकर युवाओं को प्रेरित करते रहते हैं। पर्वतारोहण, ट्रैकिंग, स्की, हाईकिंग, रीवर राफ्टिंग आदि खेलों के लिए यहां का माहौल रोमांचकारी है।

सबसे पहले मनाली की ढलानों में जोहन बैनन और मि. तोंस ने 1935 में स्की आरम्भ की थी। जोहन बैनन ने 1942 में टोची स्काउट के कैप्टन गार्डनर के साथ सोलंग की ढलानों पर भी स्की की थी। साहसिक खेलों तथा पर्यटन को बढ़ावा देने के लिए देश के प्रथम प्रधानमंत्री स्व. पंडित जवाहरलाल नेहरू के दिशा निर्देशन में तत्कालीन पंजाब के मुख्यमंत्री सरदार प्रताप सिंह कैरो की सरकार ने 16 सितम्बर 1961 को वशिष्ठ के चढियारी नामक स्थान पर पश्चिमी हिमालय पर्वतारोहण संस्थान की स्थापना की थी। वर्तमान स्थान अलेऊ में इसे बाद में स्थापित किया गया। इसके संस्थापक निदेशक स्व. हरनाम सिंह ने ढाई दशक तक इसका नेतृत्व करते हुए इसे देश-विदेश में प्रतिष्ठा दिलाई। उनके बाद इसे प्रसिद्ध पर्वतारोही कर्नल प्रेमचन्द, कर्नल एच. एस. चौहान, श्री एस.एस. शर्मा ने नई बुलन्दियों तक पहुंचाया। वर्तमान में गत पांच वर्षों से कैप्टन रणधीर सलहुरिया के निर्देशन में संस्थान नया कीर्तिमान स्थापित कर रहा है। इनके कुशल नेतृत्व में इस संस्थान ने कई मील पत्थर स्थापित किए हैं। आई.ए.एस. प्रशिक्षुओं को साहसिक खेलों की ट्रेनिंग इसी संस्थान में दी जाती है।

इस संस्थान का मुख्य उद्देश्य व नारा है *उदयानम् ते पुरुषः नावयानम्* अर्थात् हे मनुष्यो! ऊपर उठो, आगे बढ़ो, उन्नति करो, नीचे मत गिरो, पतन की ओर मत जाओ। वीरता, धीरता और गम्भीरता के साथ अपने कर्तव्य पथ पर बढ़े चलो। संस्थान द्वारा पर्वतारोहण, शिलारोहण, निपथ यात्रा, साहसिक शिविर, स्कीइंग एवं जलक्रीड़ा आदि का प्रशिक्षण दिया जा रहा है। अब तक देशी–विदेशी सहित यहां से पाँच लाख युवाओं ने प्रशिक्षण प्राप्त किया है। यहां से प्रशिक्षण प्राप्त पर्वतारोहियों-श्रीमती दीपू शर्मा, श्रीमती राधा देवी, श्रीमती डिक्की डोलमा तथा इनके प्रशिक्षक राजीव शर्मा तथा बलदेव कंवर ने 1993 में माऊंट एवरेस्ट पर झण्डा लहराया था। ये सब मनाली के ही स्थायी निवासी हैं। साहसिक एवं शीतकालीन गतिविधियों के लिए आज यह एशिया महाद्वीप का एक मात्र संस्थान बन कर उभरा है।

देश के पूर्व प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी बाजपेयी, महामहिम दलाई लामा आदि प्रतिष्ठित लोगों ने इस संस्थान को अन्तर्राष्ट्रीय फलक पर प्रसिद्धि दिलाई है। श्री अटल बिहारी बाजपेयी का इस संस्थान के साथ विशेष लगाव था, इसलिए सन् 2008 में इसका नाम अटल बिहारी बाजपेयी पर्वतारोहण एवं सहसम्बद्ध खेल संस्थान रखा गया है। संस्थान वर्तमान बाज़ार के सामने व्यास

के दायें किनारे पर घने देवदार के वृक्षों के नीचे रम्य-शांत स्थान पर स्थित है। संस्थान में प्रशासनिक भवन में अत्याधुनिक संग्रहालय, पुस्तकालय, वाचनालय, कॉन्फ्रेंस कक्ष और प्रशासनिक कार्यालय विद्यमान हैं। होस्टल में एक समय में 300 व्यक्तियों के ठहरने की सुविधा उपलब्ध है। संस्थान का अपना ऑडिटोरियम है, जहां 650 लोगों के बैठने की व्यवस्था है।

इसके अतिरिक्त पदयात्रियों द्वारा सर्दियों में रोहतांग दर्रा पार करने के उद्देश्य से मढ़ी तथा खोकसर नामक स्थानों पर बचाव चौकियों की स्थापना की गई है। ये बचाव चौकियां 15 नवम्बर से 31 दिसम्बर तथा 1 मार्च से 15 मई तक काम करती हैं। राधा अष्टमी के समय होने वाली मणिमहेश यात्रा के दौरान यात्रियों को आवश्यक मार्गदर्शन एवं सहायता भी प्रदान की जाती है। भारत सरकार के राष्ट्रीय आपदा मोचन बल को सर्च एवं रैसक्यू का प्रशिक्षण भी इसी संस्थान द्वारा दिया गया है। संस्थान द्वारा प्रतिवर्ष 26 दिन का बेसिक पर्वतारोहण कोर्स, 28 दिन का अग्रिम पर्वतारोहण कोर्स, 28 दिन का अनुदेशन प्रणाली कोर्स, 14 दिन का आपदा प्रबन्धन सर्च एण्ड रैस्क्यू कोर्स, 14 दिन का साहसिक कोर्स, 10 दिन का साहसिक शिविर एवं पदयात्रा कार्यक्रम, 12 दिन का पर्वत बचाव कोर्स, 14 दिन का बेसिक स्कीइंग कोर्स, 14 दिन का मध्यवर्ती स्कीइंग कोर्स, 14 दिन का अग्रिम स्कीइंग कोर्स, 21 दिन का स्कीइंग अनुदेशन प्रणाली कोर्स, 7 दिन का एलीमैण्ट्री स्कीइंग कोर्स, 7 दिन का अल्पावधि विशेष स्कीइंग कोर्स, 14 दिन का बेसिक जलक्रीड़ा कोर्स, 14 दिन का मध्यम जलक्रीड़ा 'कयाकिंग' कोर्स, 21 दिन का अग्रिम जलक्रीड़ा कोर्स, 5 दिन का अल्पावधि विशेष जलक्रीड़ा कोर्स, 14 दिन का बेसिक रिवर राफ्टिंग कोर्स, 7 दिन का एलीमैन्ट्री ग्रासक्रीड़ा कोर्स करवाये जाते हैं।

इन कोर्सों को करने के लिए मैट्रिक से ऊपर शिक्षा प्राप्त युवा 'पहले आओ पहले पाओ' के आधार पर उचित शुल्क देकर प्रार्थना पत्र भेज सकते हैं।

पर्वतारोहण संस्थान के खुलने के बाद बुरुआ, मनाली, शनाग, गोशाल, कोठी, पलचान, सोलंग, वशिष्ठ आदि गांवों के युवाओं ने सोलंग की ढलानों में स्की करना आरम्भ किया। परिणामस्वरूप आज इन गांवों के स्कीयर अन्तर्राष्ट्रीय शीतकालीन खेल स्पर्धाओं में मनाली का नाम रोशन कर चुके हैं।

सप्तम अध्याय

विभिन्न पर्यटन स्थल

मनाली के चारों ओर देवदार के हरे-भरे वृक्ष और बीच में नदी संगम को देखकर ऋग्वेद की एक ऋचा बरबस ही याद आती है-

उप रे गिरीणां
संगमे च नदीनाम्
धियो विप्रा अजायत।।

अर्थात् पर्वतों के एकांतस्थान में, नदियों के संगम पर ही स्थित होकर कवियों ने प्रेरणा पाई है। व्यास घाटी सचमुच में अतुलनीय है। कुलान्त पीठ महात्म्य में यहां के सौंदर्य के बारे में ब्रह्मा ने नारद से कहा था– हे नारद! जिस पीठ में पार्वती सहित महादेव ने शबर-शबरी का रूप धारण किया था, वहां विपाशा और पार्वती नदियां बहती हैं, वह साक्षात् स्वर्ग है। जहां व्यास और वसिष्ठ ने तप किया था और जहां पूर्व काल में पार्वती भीलनी के रूप में रह चुकी है, जहां प्रेत कुष्मांड तथा हज़ारों योगिनियां रहती हैं, सचमुच वह पीठ देव व दानवों के लिए भी दुर्लभ है। वह मोक्षदायक है। इन्द्रकील पर्वत का आश्रय लेकर यहां देवी भुवनेश्वरी रहती है।

यहां असंख्य पवित्र सर-सरोवर हैं, जिनमें स्नान करने लोग दूर-दूर से आते हैं। यहां ऐसी चरागाहें हैं, जो अपनी हरियाली से पर्यटकों को आनन्द प्रदान करती हैं। यहां ऐसी चोटियां व ढलानें हैं, जो साहसिक पर्यटन से जुड़े लोगों में रोमांच भर देती हैं। हरे-भरे जंगल और कल-कल बहती व्यास ने मनाली के सौंदर्य में चार चांद लगाये हैं। मनाली के आसपास निम्नलिखित प्रमुख तीर्थ एवं पर्यटन स्थल हैं–

नेहरू कुण्ड

भृगु-सरोवर का पानी मनाली-लेह राजमार्ग के किनारे पर बाहंग नामक स्थान के निकट नेहरू कुण्ड में निकलता है। इसलिये नेहरू कुण्ड की पुराने समय से बहुत प्रसिद्धि है, क्योंकि भृगु सरोवर का पवित्र और जड़ी-बूटियों

के गुणों से युक्त पानी श्रद्धालुओं को सड़क के निकट उपलब्ध होता है। भृगु सरोवर शिखर के दूसरी ओर के हिम-खण्ड का ही पानी है जो व्यास और राहणी नाला के संगम पर मिलता है। इस जल प्रपात से अनेक बार बड़ी भयानक आवाज़ें सुनाई पड़ती हैं। लोगों का विश्वास है कि ये सागू नामक राक्षस की चीखें हैं, जिसे गले में याक पशु के तेज़ सींग डालकर पांडवों के भाई भीम ने मार दिया था। इस झरने को स्थानीय लोग *सागू-खौल* नाम से जानते हैं, परन्तु आजकल इसे *भीम फाल* के नाम से अधिक जाना जाता है।

व्यास कुण्ड

समुद्रतल से 13400 फुट की ऊंचाई पर स्थित रोहतांग शिखर पर मार्ग के बायीं तरफ एक बड़ी चट्टान के नीचे व्यास कुंड है। यहीं पर महाभारत के रचयिता महर्षि व्यास ने तपस्या की थी। हाल ही में यहां पर हिमाचल के पर्यटन विभाग द्वारा व्यास ऋषि का डोम शैली में एक मंदिर बनवाया गया है। मंदिर के अन्दर पवित्र जल का स्रोत तीर्थ के तौर पर मान्य है। रोहतांग आने वाले सभी पर्यटक इस जल में हाथ मुंह-धोना नहीं भूलते। व्यास नदी के दो स्रोत हैं—*व्यास रिखी* और *व्यास कुण्ड*। मनाली-लेह राजमार्ग पर चलते हुए रोहतांग पर्वत-शिखर पर सड़क के दायें किनारे एक बड़ी चट्टान है। उसके साथ ही पानी का चश्मा है जहां से पानी की बारीक धारा नीचे की ओर बहती है। यही व्यास नदी का मूल स्रोत है, जिसे व्यास रिखी कहते हैं। प्राचीन समय से लेकर यहां पत्थरों की दीवारों का छोटा सा मन्दिर गर्मियों में बनता और सर्दियों में टूटता रहा है। यहां पत्थर की एक छोटी सी मूर्ति भी स्थापित रही है। अब हिमाचल-प्रदेश सरकार के भाषा-संस्कृति विभाग ने छोटा सा मन्दिर विधिवत् निर्मित किया है।

दशौहर

व्यास रिखी और व्यास-कुण्ड के बीच, परन्तु दोनों से अधिक ऊँचाई पर स्थित है दशौहर। यह चारों ओर बर्फ की चोटियों से घिरा है, परन्तु दक्षिण और उत्तर दिशाओं की चोटियां अधिक ऊँची हैं। हेमन्त-ऋतु में यह सारा सरोवर बर्फ से ढक जाता है। एक किनारे से दूसरे किनारे तक यह बर्फ का खुला मैदान लगता है, परन्तु ज्यों-ज्यों गर्मी बढ़ने लगती है, बर्फ पिघल कर जल में परिवर्तित होने लगता है। भादों महीने में इसका फैलाव लगभग 200 मीटर तक होता है। तब उत्तर दिशा में बर्फ के ढेर के नीचे से बहता पानी और सरोवर के ऊपर जमी पानी की सतह के बीच बने खोखले भाग *(ड़्वार)* का

दृश्य बड़ा विचित्र और मनोरंजक लगता है। वर्ष भर बर्फ से घिरा रहने के कारण यहां का पानी अत्यन्त ठण्डा है। इसीलिए इसे शेला-सौह्र अर्थात् शीतल-सौर भी कहते हैं। इसे दशौहर इसलिए कहते हैं क्योंकि यहां का पानी दो विपरीत दिशाओं में तेज़ गति के साथ शर (वाण) की तरह बहता है (द्विशर)। लाहौल की ओर इसका पानी 'खोखसर' के निकट चन्द्रा-नदी से मिलता है और कुल्लू की ओर का पानी 'राहणी-नाला' के रूप में व्यास-नदी में मिलता है।

यहां जाने के लिए एक रास्ता मढ़ी के ऊपर सर्पाकार मोड़ों के आखिरी किनारे से होकर है। यह सीधी खड़ी चढ़ाई है। दूसरा रास्ता रोहतांग के दायीं तरफ से होकर है। दशौहर झील के पानी में अद्भुत शक्ति है। स्व. कंवर टेढी सिंह ने कुलांतपीठ नामक पुस्तक सन् 1935 में उर्दू में लाहौर से प्रकाशित करवाई थी जो स्व. उधोराम अवस्थी के पास उपलब्ध थी। झील के बारे में उन्होंने उसमें लिखा है कि 14वीं शताब्दी में भरतपुर के राजा विचित्रसेन को वृद्धावस्था में एक कन्या संतान की प्राप्ति हुई लेकिन कन्या की एक टांग घोड़े की थी। ज्योतिषियों ने बताया कि उत्तर भारत में हिमालय की किसी झील के पास एक घोड़ी गिरी पड़ी है जिसकी एक टांग झील से बाहर रह गई है। जब तक वह टांग झील के पानी में नहीं डूबेगी तब तक राजकन्या की टांग ठीक नहीं हो सकती। राजा द्वारा तब झील की खोज में सेवकों के दल भेजे गए। पूछताछ करते हुए एक दल दशौहर झील के पास पहुंचा और वहां गिरी घोड़ी की टांग को पानी में डुबोया जिससे राजा की पुत्री ठीक हो गई। उस दिन 20 भादों था। इसलिए अब भी हर वर्ष श्रद्धालु 20 भादों को इस झील में स्नान करने को पुण्यदायी मानते हैं। दशौहर को कुल्लुवी में *शेलोशौहर* भी कहते हैं।

व्यास झील

ऋषि व्यास स्नान करने के लिए रोहतांग से उत्तर-पश्चिम दिशा की ऊँची पर्वत चोटी पार करके व्यास-कुण्ड में जाया करते थे, जहां पानी धारा में न बह कर पहले कुण्ड में जमा होता है। यह लगभग पचास मीटर घेरे का कम गहरा कुण्ड है। सर्दियों में बर्फ से ढक जाता है, परन्तु गर्मी के दिनों में हरे-भरे घास की ढलानदार पहाड़ी और जड़ी-बूटियों से घिरा यह अत्यन्त आकर्षक लगता है।

सोलंग नाला से लगभग पन्द्रह कि. मी. ऊपर पर्वत पर धून्दी नामक वह स्थान है जहां से लाहुल के लिये सुरंग खोदने की सरकार की योजना

है। यह खुला स्थान है और गूजर लोग गर्मियों में यहां गाय-भैंसें पालते हैं। कुछ आगे भेड़-बकरियां चराते पुहाल-गद्दी स्वच्छ वातावरण का आनंद लेते हैं। समुद्र-तल से लगभग 9500 फुट की ऊंचाई पर जरालू स्थान पड़ता है, जहां ढलानदार खुली चरागाहें हैं। जरालू से लगभग दो घण्टे की चढ़ाई चढ़ने पर एक और विशाल चरागाह आती है जिसे *बकर-थाच* कहते हैं। थाच पहाड़ों पर वे स्थान हैं जहां गर्मियों में भेड़-बकरियां खुले में रखी जाती हैं। यहां *नीरू* नामक घास उगता है जो भेड़-बकरियों के चरने पर भी रात-दिन बढ़ता रहता है। यहां कड़ू, पतीस, गुग्गल धूप जैसी जड़ी-बूटियां और खरशू, रखाल, बान, मोहरू के वृक्ष पाए जाते हैं। यहां से डेढ़ दो कि. मी. ऊपर व्यास-कुण्ड स्थित है। व्यास-कुण्ड पर जाने के लिये पलचान से ही सीधा परन्तु चढ़ाई वाला मार्ग साथ-साथ जाता है। पलचान से लगभग तीन कि. मी. दूर इस नाले के किनारे चारों तरफ वृक्षों से घिरा हुआ बहुत खुला ढलानदार स्थान है। इसमें न कहीं वृक्ष हैं न झाड़ियां। हरी-भरी घास का विशाल स्थान है। कहते हैं कि पुराने समय में यह हेड़ा अर्थात् शिकारगाह या आखेट स्थल था। बर्फ के दिनों में या तो घोरल, ककड़, बीणा आदि जानवर और पक्षी आसपास के वृक्षों के घने जंगल छोड़ कर यहां धूप तापने आते थे या लोग उन्हें घेर कर इस स्थान पर ले आते जहां खुले में उनका शिकार करना आसान होता था।

भृगु-सरोवर

रोहतांग के बायीं तरफ लगभग 5 किलोमीटर की दूरी पर भृगु सरोवर अत्यन्त रमणीय स्थान पर अवस्थित है। यहां पहुंचकर हर बटोही का दिल करता है कि यहीं डेरा डालकर इस सौंदर्य को एकटक देखता रहे। परन्तु रोहतांग, वशिष्ठ और गुलाबा से यहां तक पहुंचना हिम्मत वालों का ही काम है। अगर हिम्मत करके यहां कोई पहुंच गया तो घाटी का सौंदर्य देखकर उसके शरीर की सारी थकान मिट जाती है। घाटी से हनुमान टिब्बा व मनाली पीक बिल्कुल सामने दिखाई देते हैं। समुद्र तल से 4240 मीटर की ऊंचाई पर स्थित यह शांत, स्वच्छ व निर्मल झील लगभग 200 मीटर के घेरे में फैली है। झील के उत्तर में बर्फानी चोटी है। पानी नीला-साफ, जिसमें चेहरा शीशे की भांति साफ देखा जा सकता है। 20 भादों को इस झील में स्नान करना पवित्र माना जाता है। इस दिन सैकड़ों की संख्या में श्रद्धालु यहां स्नान करके पुण्य कमाते हैं।

पौराणिक कथानक के अनुसार एक बार महर्षि भृगु ने हेमकूट पर्वत

(स्थानीय नाम हामटा जोत) पर भगवान् शंकर की घोर तपस्या की। तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान् शंकर ने उन्हें वर मांगने के लिए कहा। ऋषि भृगु ने भगवान् शंकर से प्रार्थना की, 'हे भोले नाथ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो इसी स्थान पर मेरे नाम से एक सरोवर की उत्पत्ति हो। युगों-युगों तक इस सरोवर का जल अमृत-तुल्य, मोक्षदायक एवं औषधि गुणों से युक्त रहे।' शंकर ने प्रसन्न होकर ऋषि की इच्छा पूरी की थी। उसी समय से इस का नाम भृगु-सरोवर पड़ा।

भृगु सरोवर यात्रा का प्रथम व सुगम मार्ग वशिष्ठ गांव से होकर है। कोठी गांव से होकर भी एक मार्ग भृगु सरोवर की ओर जाता है। वशिष्ठ व कोठी से इस पथ में देवदार व बरास के पेड़ों के सघन वन हैं। इन पेड़ों की ठण्डी हवाएं यहां से गुज़रने वाले पथिकों की जोखिम भरी यात्रा को सुगम बनाने में सहायक होती हैं।

पाण्डु रोपा

भृगु-तुंग से नीचे चार–पांच किलोमीटर की दूरी पर एक ऐसा आकर्षक स्थान है जो चारों ओर से छोटे-छोटे पर्वतों से घिरा हुआ है। दूर से देखने पर यह स्थल सीढ़ीनुमा धान के खेत की भांति दिखाई देता है। ऐसा विदित होता है कि अभी–अभी कोई धान की पनीरी खेतों में रोपकर गया हो। स्थानीय लोगों के कथनानुसार पाण्डवों ने अपनी माता कुंती के साथ वारणावत लाक्षागृह से निकल कर गुप्त रूप से हिमालय के दामन में स्थान-स्थान पर अज्ञातवास करते हुए सम्भवतः इसी ओर प्रस्थान किया होगा। ये सीढ़ीनुमा धान की क्यारियां पाण्डवों द्वारा ही बनाई गई हैं और ये धान के खेत आज तक पाण्डवों की स्मृति को संजोए हुए हैं। इस कारण यह स्थान पाण्डु-रोपा के नाम से जाना जाता है। यहाँ गर्मियों में असंख्य घोड़े, खच्चरें, गायें, भैंसे, चरती हैं। प्रायः गांव के लोग मई–जून में अपने मवेशियों को यहां चरने छोड़ देते हैं और अक्तूबर–नवम्बर में सर्दियां शुरू होने पर इन्हें वापस गांव ले जाते हैं। लोकधरणा है कि यहीं से चलकर पांडव पांचाल (आज का पंजाब) देश में जाकर द्रुपद की पुत्री द्रौपदी के स्वयंवर में पहुंचे थे। इन्हीं उपत्यकाओं के आसपास समय-समय पर पाण्डव और व्यास ऋषि का मिलाप होता रहता था।

नीली आल़

मनालसू नाले का उद्‌गम स्रोत नीली आल़ है। इसे नीला सौर भी कहा जाता है। वशिष्ठ के ठीक सामने व्यास नदी के दायें किनारे पर पुरानी और नई

मनाली में सीमा बांधती हुई मनालसू खड्ड बहती है। सम्भवतः खड्ड का नाम मनालसा होगा, जिससे लघुतावाचक प्रियसूचक शब्द मनाल सू बना। तिब्बती-भोटी में 'सा' का अर्थ भूमि या स्थान है और मनालसा का अर्थ हुआ *मृणालों की भूमि।* सचमुच यह मनालसा मृणाल पक्षियों की भूमि में से बहती हुई यहां पहुंची है। पुराने समय में इस नदी का सारा क्षेत्र करडी (मादा मोनाल), मोनालों का इलाका था। आज भी जब मोनाल पक्षी समाप्त होने की स्थिति में है मनालसू खड्ड के स्रोत के आसपास के क्षेत्र में मोनाल अच्छी संख्या में पाये जाते हैं।

क्लाथ

मनाली से आठ किलोमीटर पहले क्लाथ नामक स्थान में गर्म जल-स्रोत हैं। इन स्रोतों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कहा जाता है कि वशिष्ठ ऋषि स्नान के लिए मणिकर्ण जाया करते थे। एक बार वे मणिकर्ण से गर्म जल का कमण्डल भर कर ला रहे थे। जब वे क्लाथ गांव में पहुंचे तो वहां उन्हें कपिल मुनि मिले, जिनसे वशिष्ठ ऋषि के हाथ में पकड़े कमण्डल को धक्का लगा, और गर्म पानी नीचे गिर गया। कहा जाता है कि पानी गिरने के पश्चात् पृथ्वी से गर्म जल बाहर आ गया। यह गर्म जल आज भी क्लाथ गांव में है। क्लाथ को भी तीर्थ स्थल माना जाता है। कहा जाता है कि कपिल नाम से ही इस स्थान का नाम क्लाथ पड़ा। यहां मन्दिर में शिवलिंग के आकार की मूर्ति है। क्लाथ के पानी में लोहा नहीं है, न गंधक है। गंधक के अंश सल्फेट के रूप में ज़रूर हैं। एक अन्य धारणा के अनुसार जमदग्नि ऋषि और शांडिल्य ऋषि में क्लाथ गांव के लिए यह विवाद चल रहा था कि इस क्षेत्र में किसका आधिपत्य होगा ? दोनों ही ऋषि इस क्षेत्र पर अपने-अपने अधिकार का दावा कर रहे थे। जब इनमें विवाद चल रहा था तो ऋषि वशिष्ठ मणिकर्ण से लौट रहे थे। उनके हाथ में मणिकर्ण से लाये गर्म जल का कमण्डल था। शाण्डिल्य ऋषि ने वशिष्ठ ऋषि से अनुरोध किया कि वे उन दोनों में उत्पन्न हुये विवाद का फैसला करें। वशिष्ठ ऋषि ने कहा कि अभी उनके पास समय नहीं है। चूंकि उन्हें जल्दी उनके आश्रम पहुंचना है। शाण्डिल्य ऋषि नहीं माने। उन्होंने वशिष्ठ ऋषि का हाथ पकड़ कर उन्हें झकझोरा तथा पुनः आग्रह किया। जैसे ही शाण्डिल्य ऋषि ने वशिष्ठ के हाथ पकड़े वैसे ही उनके कमण्डल से पानी गिर गया और वहां गर्म जल प्रस्फुटित हो गया।

खनपरी-सौर

खनपरी-सौर मनाली से पश्चिम की ओर खनपरी टिब्बा की ओट में

स्थित है। लगभग बारह हज़ार फुट की ऊँचाई पर स्थित यह विशाल सरोवर मणिमहेश की पवित्र झील का सा सुन्दर दृश्य प्रस्तुत करता है। छोटे-छोटे जलस्रोत इस कटोरेनुमा झील में सम्मिलित होते हैं और इसका पानी तीन दिशाओं में बहने लगता है। दक्षिण में यह क्लाथ की ओर बहता है जिसे क्लाथ नाला कहते हैं और दूसरा घरशाड़ी नाला के रूप में जाना जाता है। तीसरा नाला इनमें से सबसे बड़ा है जो उत्तर-पूर्व की ओर बहते हुये मनाली के पास रांगड़ी में व्यास में समा जाता है। यह सरौढ़-नाला कहलाता है। उद्गम स्थल एक ही होने के कारण जब कभी इस पर्वत-शिखर पर भारी वर्षा या बादल फटने जैसी स्थिति पैदा होती है तो तीनों नालों में एक साथ बाढ़ आती है।

'कुल्लू के सरसरोवर' नामक पुस्तक में टेक चन्द ठाकुर ने लिखा है कि यह जोगणियों का घर है। इसलिये जब-कभी या बीस भादों के दौरान देवी-देवता रथ पर सवार होकर पवित्र स्नान के लिये सौर पर जाते हैं तो सरौढ़-नाला मार्ग से कोई नहीं जाता। माना जाता है कि ये देव-कन्याएं देवताओं की शक्ति का हरण कर लेती हैं। कड़ू, पतीस, दूणू, बेठर, बनककड़ी और गुग्गुल जैसी दुर्लभ जड़ी-बूटियों से तो सरौढ़ घाटी भरी पड़ी है ही, साथ ही यह ट्रैकिंग के लिये आदर्श है। सौर से निकल कर सरौढ़ नाला खनपरी–टिब्बा नामक स्थान में स्थित डूम-डूमणी नाम की सींगनुमा दो विशाल चट्टानों के नीचे से गुज़रता है। यहां से चल कर यह नाला *नौड़- नौड़न* नामक दो पहाड़ियों की ओट से गुज़रता है।

इन पहाड़ियों के एकदम नीचे *काहिका रा पौट* नामक सुन्दर स्थान है जहां पर यह सरौढ़ नाला स्लेटनुमा विशाल प्रस्तर शिला के ऊपर से सप्तधारा के रूप में नीचे बहता है। यह दूधिया धाराएं बहुत पवित्र मानी जाती हैं, जहां पर किसी भी प्रकार का अशुचितापूर्ण कृत्य निषेध माना जाता है। हां ! चर्मरोग और इसी प्रकार की दूसरी व्याधियों से पीड़ित लोग यहां पर स्नान करना शुभ मानते हैं। इसी सरौढ़ की दूसरी धारा डूम-डूमणी से ठीक नीचे बहती हुई छोल (झरना) का रूप लेती है। इस प्रपात या छोल या फाल को दूर से ही देखा जा सकता है। लगभग सौ मीटर की ऊँचाई से गिर रहा यह प्रपात बहुत मनोरम प्रतीत होता है जो नीचे आकर अपने से अलग हुए दूसरे नाले के साथ पुनः आ मिलता है। इस स्थान को *कुन्धलै री बिहाल* के नाम से जाना जाता है। इसी कुन्धलै री बिहाल के बायीं ओर लम्बी-चौड़ी चरागाहें और विशाल प्रस्तर शिलाएं हैं। लोक विश्वास है कि सरौढ़ नाला निर्मित इस घाटी में किसी

समय अनेक गांव बसे हुए थे जिनके नाम 'अड़ा', 'नियागल', 'ख्यारग', 'तिचम' आदि थे। एक बार भूकम्प आने के कारण इन गांवों से ठीक ऊपर स्थित हुंज़रू ढौग (पर्वत) टूट गया और सारे गांव धूलिसात हो गये। इन गांवों के खण्डहर तो कहीं नहीं हैं लेकिन पत्थर के डंगे, खेतनुमा जंगल और पहाड़ के टूटे शिलाखण्ड अवश्य ही आज भी विद्यमान हैं। सरौढ़ नाला का पानी भी पवित्र माना जाता है। इसके पानी में पशुओं की लाशें फेंकना, गंदगी की निकासी और मुर्दे जलाना आदि का निषेध है। 'सिऊंसा' स्थित देवता कार्तिक स्वामी के पिण्डप्राण (प्रतिमा) का जलाभिषेक इसी नाले के जल से किया जाता है।

युगों-युगों से बहती आ रही सरौढ़ नाला की यह अविरल धारा दर्जनों गांवों की प्यास बुझाती हुई अनेक टुकड़ों में बँट कर अन्ततः 'रांगड़ी' और 'खाचा-रा-नाल'जैसे स्थानों पर आकर व्यास नदी का हिस्सा बनती है।

नगौणी सौर

हलाण से ऊपर नगौणी नामक स्थान पर अपने तपोबल से वासुकि नाग ने ठण्डे पानी का एक चश्मा निकाला। इसी पानी से एक सौर का निर्माण हुआ है। इस झील में यदि तिनका भी पड़ जाए तो पीले रंग की चिड़ियां उस घास को उठाकर बाहर फेंकती हैं। पानी ठण्डा होने के कारण इसमें ज़्यादा देर तक स्नान नहीं कर सकते। इसमें स्नान करने से चर्म रोगों से बचाव होता है। पवित्रता की दृष्टि से चश्मे के दो किलोमीटर वर्गाकार क्षेत्र में केवल देवता का पुजारी ही जा सकता है। यदि कोई अन्य जाने की कोशिश करता है तो देवता नाराज़ हो जाता है। इस क्षेत्र में चमड़ा, लोहा आदि ले जाना मना है। यदि लोहे की चीज़ ज़मीन से छू जाती है तो बकरे की बलि देनी पड़ती है। लोककथा के अनुसार यह सरोवर नागराज वासुकि से जुड़ा है। कहते हैं कि वासुकि नाग नग्गर से दो किलोमीटर आगे छाकी में रुका। छाकी से वह रूमसू में पहुंचा। यहां आकर वासुकि नाग ने तप करना शुरू किया। रूमसू में उस समय देवता शुभ नारायण निवास करता था। अतः वासुकि नाग को कैसे बर्दाश्त कर सकता था। वासुकि नाग रात को तप में बैठ गया। अर्धरात्रि को शुभ नारायण ने मुर्गे की आवाज़ निकाली जो सुबह होने का संकेत था। ज्यों ही वासुकि नाग ने आँखें खोली तो देखा आधी रात है, तो वह क्रोधित हुआ। यह स्थान त्याग कर उसने हलाण की ओर प्रस्थान किया। उस समय हलाण में देवता जगथम निवास करता था। वासुकिनाग ने अपने तपोबल से मणिकर्ण घाटी को प्रकाशमय तथा ऊझी घाटी को अंधकारमय कर दिया था। देवता जगथम इस

अंधकार से घबरा गया, वह प्रकाशमय क्षेत्र को जाना चाहता था। अतः उसने वासुकि नाग से मणिकर्ण की ओर जाने की इच्छा ज़ाहिर की, लेकिन वहां तक पहुंचना काफी कठिन था। अतः उन्होंने चन्द्रखणी जोत पर आकर रस्सी वाला झूला बनाया और जगथम झूले पर बैठ गया। वासुकि नाग ने धक्का देकर जगथम देवता को बरशैणी (मणिकर्ण) पहुंचाया। वासुकि नाग चन्द्रखणी से वापिस हलाण आया और नगौणी में तपोबल से इस तीर्थ का निर्माण किया। रौई, तोस, देवदार, मोहरू, बान आदि के वृक्ष तथा झाड़ियों से भरपूर यह स्थान बहुत ही रमणीय है। इस स्थान पर एक मेला लगता है जिसे शईरी मेला कहते हैं। जहां पर मैदान है वहां उत्तरी किनारे पर चश्मे का निकला पानी झील से होता हुआ झरने का निर्माण करता है। दस मीटर की ऊँचाई से गिरने वाले इस झरने के नीचे देवी-देवता तथा लोग स्नान करते हैं। जो तीर्थ यात्री नगौणी तीर्थ तक स्नान करने नहीं पहुंच सकते, वे रामन गांव के निकट के तीर्थ में नहाते हैं। इस स्थान को कोन्हा-तीर्थ कहते हैं।

सोलंग नाला

सोलंग नाला मनाली से 18 किलोमीटर की दूरी पर उत्तर-पश्चिम में स्थित है। मनाली राष्ट्रीय राजमार्ग से होते हुए पलचान से एक अन्य मार्ग रोहतांग सुरंग की ओर जाता है। उसके बीच ही पलचान से 5 किलोमीटर की दूरी पर सोलंग की ढलानें हैं। यहां पर अटल बिहारी बाजपेयी पर्वतारोहण एवं सम्बद्ध खेल संस्थान ने साहसिक खेलों का केन्द्र स्थापित किया है। यहां स्कीइंग की कई तरह की खेलें होती हैं, परन्तु मुख्य आकर्षण पैराग्लाइडिंग है। रोमांचकारी पर्यटकों और यात्रियों के लिये यह महत्त्वपूर्ण स्थान है। निकट के गांव बुरूआ और आसपास के अधिकांश परिवारों के युवक पैराग्लाइडर हैं। उन्होंने अपने पैराग्लाइडर रखे हैं। सरकार से प्रमाण-पत्र और स्वीकृति पत्र प्राप्त करके सफलता से कार्य कर रहे हैं। इन्हीं ढलानों पर अभ्यास करके अनेकों स्थानीय खिलाड़ी शीत खेलों में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की स्पर्धाओं में स्वर्ण पदक जीतकर परचम लहरा चुके हैं। पश्चिमी हिमालय पर्वतारोहण संस्थान मनाली हर वर्ष जनवरी-फरवरी में इन ढलानों में स्की की प्रतियोगितायें करवाता है।

अञ्जनी महादेव

सोलंग के दक्षिण की तरफ एक किलोमीटर की दूरी पर एक झरना गिरता है जिसकी बूंदों से शिवलिंग बनता है। यह शिवलिंग नवम्बर से अप्रैल

तक रहता है। इसे अञ्जनी महादेव के नाम से जाना जाता है। इस नाले ने किसी समय रौद्र रूप दिखाकर बड़ी-बड़ी चट्टानों को अपने साथ बहाकर पलचान, बुरूआ, शनाग गावों तक पहुंचाया था। ये चट्टानें अभी भी बुरूआ गांव में इसकी गवाही देती हैं। इन चट्टानों का वर्णन लोकगीतों की पंक्ति में इस प्रकार हुआ है–

रड़खड़ा बोला झेचा रा बुरूआ, पधरी सोमसी सेरी।
पौटड़ू पांदै पाई प्रेशना, झूरी मेरी की तेरी।।

अर्थात् बुरूआ के पत्थरों पर बैठकर अपने प्यार की परीक्षा लेनी है कि मेरा प्रेम सच्चा है या तुम्हारा। पलचान से 5 किलोमीटर की दूरी पर सोलंग नाले के दूसरी ओर कांगणी नाले का अपना अलग महत्त्व है। इसका स्रोत ऊँचे पर्वत-शिखरों का हिम-खण्ड है, जहां जोगणियां वास करती हैं। जब कभी ये क्रुद्ध होती हैं तो भारी बाढ़ का प्रकोप ढाती हैं। सोलंग नाला के पास भारी-भारी पत्थरों के ढेर उन्हीं के क्रोध का परिणाम है। इस नाले का जल प्रपात आजकल रुचि का कारण बना है। पलचान से लगभग 8 कि. मी. ऊपर मूल नाले का कुछ पानी अलग रुख धारण करता है और ऊँचे झरने के रूप में बहता है। 15 नवम्बर के आस-पास इसका पानी जमना आरम्भ होता है। ज्यों-ज्यों सर्दी बढ़ती है, यह जल जमता हुआ नीचे से ठोस बनता जाता है और इसकी लम्बाई भी बढ़ती जाती है। 15 जनवरी तक यह झरना लगभग 50 मीटर ऊँचा लिंग सा बन जाता है। तब इसे अञ्जनी (अंजलि) महादेव कहते हैं। गर्मियों में इसे देखने के लिये पर्यटकों की भीड़ लग जाती है।

कोठी

मनाली से आगे पलचान तक व्यास के बायें किनारे से होकर सड़क है। मार्ग में दायीं तरफ देवदार के हरे-भरे पेड़ और नीचे बहती व्यास की कल-कल करती तरंगें प्रकृति के अनुपम अस्तित्व का आभास करवाती हैं। सुबह के शांत वातावरण में व्यास के पानी की मधुर ध्वनि ऐसी लगती है मानो स्वयं व्यास ऋषि तानपुरा लेकर माधुर्य का विस्तार कर रहे हों। पलचान से आगे अनेकों घुमावदार मोड़ों से होकर उत्तुंग रोहतांग की चढ़ाई आरम्भ हो जाती है। कोठी व्यास घाटी का आखिरी गांव है। रंग-बिरंगे फूलों से सुसज्जित कोठी की चरागाहें देखकर मन्त्रमुग्ध होना स्वाभाविक है। जुलाई-अगस्त में कोठी में बारिश की बूंदें बरसती रहती हैं। जैसे ही बादल रोहतांग की पहाड़ियों से हटना शुरू होते हैं तो कोठी के आसपास की

हरी-भरी चरागाहों को देखकर पर्यटक पुलकित होते हैं।

गुलाबा

जब लाहुल जाने के लिए केवल पैदल रास्ता था वाहन मार्ग नहीं बना था तब गुलाबा की चढ़ाई चढ़ते हुए लाहुल में नौकरी करने वाले कर्मचारी कहते थे– *कुल्लू लाहुल गुलाबा, लाहुल नीं बौसणा बाबा।* गुलाबा क्षेत्र में किसी समय देवदार व रई-तोस के बड़े-बड़े पेड़ हुआ करते थे। स्वतंत्रता के बाद 1960 में सरकार ने नए पेड़ लगाने की शर्त पर पुराने पेड़ों को काट लिया। पेड़ तो कट गए, नये पेड़ भी लगाए गए परन्तु बिना देखभाल के ये पनप नहीं सके और पेड़ों रहित गुलाबा आज तक नये पेड़ों के पनपने की बाट जोह रहा है।

गुलाबा से ऊपर रास्ते में रंगबिरंगे असंख्य फूलों की भीनी भीनी खुशबू वातावरण में रस घोलती है। धूप की तपिश से बचने के लिए हर सौ कदम के फासले पर खरशू के पेड़ यात्री को विश्राम करने का निमंत्रण देते हैं। लगभग दो किलोमीटर चढ़ने के बाद चारों ओर वनस्पति रहित पहाड़ियां दिखती हैं। सामने व्यासकुंड, मढ़ी, दशौहर और धार के पार की तरफ सोलंग नाला स्पष्ट दिखाई देता है। दशौहर झील के पार की चरागाहों में भेड़ों के झुण्ड चरते हुए नज़र आते हैं।

मढ़ी

मढ़ी रोहतांग से पहले 20 किलोमीटर की दूरी पर कुछ देर रुकने का स्थल है। इसके नामकरण के सम्बन्ध में दो धारणाएं हैं। प्रथम यह कि यहां पर सिक्ख सेना के सरदार लैहणा सिंह मजीठिया ने सन् 1839 ई. में एक छोटा सा मंदिर बनवाया था। समुद्रतल से 10419 फुट ऊंचे इस स्थान पर छोटे मंदिरों की अस्थायी स्थापना के कारण इसका नाम मढ़ी पड़ा। दूसरी यह कि जब सिक्ख सैनिकों ने लाहुल पर आक्रमण करना चाहा तो वे यहां की ठण्ड को बर्दाश्त न कर सके और एक-एक करके मरने लगे। इसलिए मरे हुए लोगों के नाम पर इसका नाम मढ़ी पड़ा।

आजकल यहां पर सभी वाहन थोड़ी देर रुकते हैं। यात्री चाय नाश्ता करते हैं। यहां पर दस-पन्द्रह अस्थायी ढाबे तथा टी स्टाल हैं। ये ढाबे वाले 15 अप्रैल से 15 नवम्बर तक यहां डेरा डालते हैं। नवम्बर के बाद बर्फ पड़ने पर ये अपना सामान समेटकर घरों को लौट जाते हैं।

आदिकाल से ही इस समतल जगह पर लाहुल आने-जाने वाले विश्राम करते हैं। जब लाहुल के लिए वाहन योग्य सड़क नहीं बनी थी तब लोग

मनाली से पैदल चलकर पहला पड़ाव मढ़ी में ही डालते थे। मढ़ी से रोहतांग की तरफ पैदल चलना हो तो इसकी दूरी केवल तीन किलोमीटर है परन्तु वाहन योग्य सड़क से मढ़ी से रोहतांग की दूरी लगभग 20 किलोमीटर है।

रोहतांग

समुद्रतल से 13400 फुट की ऊंचाई पर स्थित रोहतांग दर्रा कुल्लू लाहुल के बीच की विभाजन रेखा है। रोहतांग से एक तरफ व्यास घाटी की हरी-भरी वादियों के दर्शन होते हैं तो दूसरी ओर सीना ताने ऊंचे-ऊंचे अजेय पर्वतों का दृश्य रोमांचित करता है। मूरक्राफ्ट प्रथम ऐसा विदेशी यात्री था जिसने अपने साथी ट्रैवक के साथ 17 अगस्त 1820 को यह शिखर पैदल पार किया था। शिखर पर मार्ग के एक तरफ एक बड़ी चट्टान के नीचे व्यास कुंड है। रोहतांग दर्रा हर वर्ष आवागमन के लिए जून के प्रथम सप्ताह में खोल दिया जाता है और 15 नवम्बर के बाद बन्द हो जाता है।

रोहतांग को तिब्बती भाषा में मौत का घर भी कहा जाता है चूंकि अब तक यहां पर आंधी आने से अनेकों यात्री मौत के शिकार हो चुके हैं। के. अंगरूप लाहौली ने सोमसी के जून-अक्तूबर 1997 के अंक में अपने लेख 'स्पिति की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि' में पृष्ठ 88 पर लिखा है कि ग्यारहवीं शताब्दी में लद्दाख के शासक ग-दन-छे-वांग की एक सैन्य टुकड़ी ने लाहौल में केलंग के गढ़ पर आक्रमण किया था। लाहौल के बाद यह टुकड़ी जब कुल्लू की ओर अग्रसर हो रही थी तो रटांग दर्रे के आंचल में पहुंचकर भारी हिमनद (ग्लेशियर) के स्खलन से दब कर सभी की वहीं पर मौत हो गई थी। इनके शव महीनों तक बर्फ के नीचे दबे रह गए थे। जून-जुलाई की तीव्र धूप में जब बर्फ गलने लगी तब लोगों ने देखा कि उन भोटिया सैनिकों के शवों से रटांग दर्रे का आंचल पट सा गया है। उस भयावह दृश्य को देखकर लोगों के मुंह से अनायास ही *रो-थङ* (शवों का मैदान) शब्द निकल पड़ा था। तभी से लाहौल और कुल्लू के मध्य स्थित यह दर्रा *रो-थङ* शब्द के ही विकृत रूप रोहतांग के नाम से जाना जाता है। कुल्लू के लोगों की हमेशा से ही लाहौल को देखने की जिज्ञासा रही है। इसीलिए एक लोकगीत में लोकगायक ने कहा है–

चुटा लोड़ी ती रटांगा रा ठेलरू,
लाहुल़ हेरिना ती सारा।

अर्थात् अगर रटांग का जोत टूट जाता तो हम लाहुल को आसानी से देख पाते।

अर्जुन गुफा

शुरू गांव से एक किलोमीटर ऊपर की तरफ एक गुफा में अर्जुन ने घोर तपस्या करके शिवजी से पाशुपत अस्त्र प्राप्त किया था। इस गुफा में जब अर्जुन कई दिनों तक तपस्या में लीन थे, तो सारा वातावरण प्रभावित हुआ था। पूरे ब्रह्माण्ड में धुआं निकलने लगा और प्राणियों में घुटन और घबराहट छा गई। लोगों में हाहाकार मच गया। तब सभी देवता ब्रह्माजी के कहने पर शिवजी और पार्वती के पास गए। देवताओं की प्रार्थना पर शिवजी और पार्वती शबर और शबरी का वेश धारण करके अर्जुन की परीक्षा लेने हेतु गुफा के नज़दीक पहुंचे तो उन्होंने देखा मूक नामक राक्षस सूअर बनकर अर्जुन को मारने जा रहा है। जैसे ही अर्जुन ने सूअर को मारने के लिए गांडीव पर बाण चढ़ाया तभी एक ओर से आवाज़ आई, 'सावधान! यह सूअर मेरा शिकार है।' अर्जुन ने जब आवाज़ की तरफ देखा तो सामने एक शबर को पाया। शिकार को लेकर दोनों में घमासान युद्ध हुआ। इस युद्ध में अर्जुन मूर्छित हो गया। मूर्छा टूटने पर उसने भगवान् शिव की मिट्टी की पिण्डी बनाई और उसकी पूजा करने लगा। परन्तु उसे आश्चर्य हुआ जब फूल पिण्डी पर चढ़ने के बजाय शबर के माथे पर अर्पित होने लगे। अर्जुन को आभास हो गया कि यही शिवजी हैं, तुरन्त उनके पांव में पड़ गया। तब शिवजी ने उसे गले लगाकर पाशुपत अस्त्र प्रदान किया। कहते हैं कि शिवजी तो पाशुपत अस्त्र देकर चले गए परन्तु शबरी कुछ दिन शूरू गांव में ही रही जो बाद में देवी रूप में पूजित हुई।

नग्गर

व्यास नदी के बायीं ओर समुद्रतल से 1600 मीटर की ऊंचाई पर स्थित हैरिटेज विलेज के रूप में ख्याति प्राप्त नग्गर मनाली आने वाले पर्यटकों के लिए हमेशा से आकर्षण का केंद्र रहा है, तभी विश्वविख्यात चित्रकार निकोलस रेरिख ने इसे अपनी कर्मभूमि बनाया। व्यास घाटी के सौंदर्य से प्रभावित होकर उन्होंने यहां ही अपना बसेरा बनाया। आजकल यह हिमाचल सरकार और रूस सरकार द्वारा गठित रेरिख आर्ट ट्रस्ट के अधीन है।

पंडित जवाहरलाल नेहरू भी रेरिख से अत्यंत प्रभावित थे और उनके घनिष्ठ मित्रों में से एक थे। सन् 1942 में वे पुत्री इन्दिरा गांधी के साथ नग्गर में रेरिख के पास एक सप्ताह तक ठहरे थे। रेरिख द्वारा बनाया नेहरू जी का चित्र आज भी रेरिख आर्ट गैलरी में सुरक्षित रखा हुआ है।

विशुद्धपाल ने जगतसुख से राजधानी नग्गर को बदली थी। नग्गर में गौरी शंकर मंदिर, त्रिपुरा सुंदरी मंदिर, ठावा में मुरलीधर मंदिर शिखर और पैगोड़ा शैली की नायाब कलाकृतियां है। त्रिपुरा सुंदरी मंदिर मुख्य सड़क से लगभग एक किलोमीटर की दूरी पर पैगोड़ा शैली में बना है। मंदिर परिसर में महिषासुरमर्दिनी, गणपति, लक्ष्मीनारायण, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, पार्वती आदि की पत्थर की मूर्तियां हैं। एक अष्टधातु की 30 सेंटीमीटर ऊंची त्रिपुर राक्षस की मूर्ति भी है। गौरी शंकर मंदिर शिखर शैली का 12वीं-13वीं शताब्दी में बना हुआ है। मंदिर में गौरी तथा शंकर की मूर्ति स्थापित है। मंदिर के शिखर की सतह पर चैत्य मोटिफ हैं। सामने भद्रमुख हैं। मंदिर में वर्गाकार गर्भगृह के द्वार पर संगीतकार, नर्तक, पुष्प और ललित बिम्ब पर बैठे गणेश अंकित हैं। यह मंदिर भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग की देखरेख में है। गांव से 3 किलोमीटर ऊपर की ओर ठावा में मुरलीधर मंदिर स्थापित है। इसमें श्रीकृष्ण भगवान के साथ-साथ राधिका, गरुड़, लक्ष्मीनारायण, पद्मसम्भव आदि की मूर्तियां भी स्थापित हैं। शिखर शैली के इस मंदिर की छत स्लेट की छत्रनुमा है। कुल्लू दशहरे के दिन यहां पर भी रथयात्रा होती है।

नग्गर कैसल

यह कैसल जो विशुद्धपाल से लेकर राजा जगतसिंह के समय 1660 ई. तक राजधानी रहा, अब हिमाचल पर्यटन विकास निगम द्वारा होटल के रूप में परिवर्तित किया गया है। समुद्र तल से 1600 मीटर की ऊंचाई पर स्थित नग्गर कोट का निर्माण राजा सिद्धसिंह ने करवाया था। इसके निर्माण में प्रयुक्त पत्थर बड़ागढ़ से लाये गए थे। इन्हें लाने के लिए बड़ागढ़ से लेकर नग्गर तक इतने मज़दूर लगाये गए थे कि हाथों-हाथ सारे पत्थर नग्गर पहुंच गए थे।

नग्गर कोट जिसे नग्गर कैसल भी कहते हैं, में तीन मंज़िलें हैं। इसमें लगे शहतीरों के सिरे पर शेर और अन्य जानवरों की आकृतियां खुदी हुई हैं। कोट के अन्दर स्थित जगती पट को ठारह करडुओं का सिंहासन माना जाता है। जब 1846 में मेजर हे यहां एसिस्टेंट कमिश्नर रहे तो किसी अंग्रेज ने इस पत्थर पर पांव रख दिया था, जिस कारण उसे अपने उस पैर से हाथ धोना पड़ा था। 1871 में कुल्लू के एसिस्टेंट कमिश्नर रहे हार्कोट ने अपनी पुस्तक 'डिस्ट्रिक्ट ऑफ कुल्लू, लाहुल एण्ड स्पिति' में एक ऐसे मुख्य मार्ग के होने का संकेत दिया है जो नग्गर से चंद्रखणी होते हुए तिब्बत और चीन तक पहुंचता था। पुराने समय में यहां के लोग चीन को महाचीन कहा करते थे और इसी मार्ग से व्यापार हुआ करता था।

संदर्भ ग्रंथ

हिन्दी

1. ऋग्वेद
2. कुलूत देश की कहानी–लाल चन्द प्रार्थी, नीलकमल प्रकाशन, कुल्लू, हि.प्र.
3. कुल्लू देव समागम–सं. सुदर्शन वशिष्ठ, हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी शिमला, हि. प्र.
4. कुल्लू का इतिहास एवं संस्कृति-सत्यपाल भटनागर, अनुपम प्रकाशन, अखाड़ा बाज़ार कुल्लू, हि.प्र.
5. कुल्लू व लाहुल स्पिति के वस्त्राभूषण एवं खानपान–सं. डॉ. सूरत ठाकुर, साहित्य एवं कला परिषद् कुल्लू, हि.प्र.
6. कुल्लू की ऋषि परम्परा-सं. डॉ. सूरत ठाकुर, भारतीय इतिहास संकलन समिति कुल्लू, हि. प्र.
7. पर्यटकों का स्वर्ग देवभूमि कुल्लू– डॉ. सूरत ठाकुर, पुरातत्त्व चेतना संघ कुल्लू, हि.प्र.
8. पहाड़ी संस्कृति मंजुषा– एम. आर. ठाकुर, रिलायन्स पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली
9. कुल्लू के सर सरोवर–सं. डॉ, सूरत ठाकुर, देवप्रस्थ साहित्य एवं कला संगम कुल्लू, हि.प्र.
10. हिमाचल के लोकवाद्य– डॉ. सूरत ठाकुर, अभिषेक पब्लिकेशन्ज़ चण्डीगढ़
11. हिमाचल के पूजित देवी देवता– एम.आर. ठाकुर, ऋषभ चरण जैन एवं संतति, नई दिल्ली
12. हिमाचल की देव संस्कृति, डॉ. सूरत ठाकुर, एच.जी.पब्लिकेशन्ज़ मदनगिर विलेज, नई दिल्ली
13. हिमाचल की लोक परम्परा में सृष्टि रचना विचार–सं. डॉ. विद्याचन्द ठाकुर, ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान नेरी, हमीरपुर, हि.प्र.
14. हिमाचल प्रदेश के स्थान नाम : व्युत्पत्तिजन्य विवेचनात्मक अध्ययन–सं. डॉ. विद्याचन्द ठाकुर, भाषा एवं संस्कृति विभाग हि.प्र.
15. पश्चिमी हिमालय की नाग परम्परा–सं. हीरा लाल ठाकुर एवं विद्या शर्मा, देवप्रस्थ साहित्य एवं कला संगम कुल्लू, हि.प्र.
16. दूरदर्शी एवं भुट्टिको की आत्मा स्व. वेद राम ठाकुर–सं. डॉ. सूरत ठाकुर, दी भुट्टी वीवर्ज कोऑपरेटिव सोसायटी लि. भुट्टी कालोनी कुल्लू, हि.प्र.
17. वैवस्वत मन्वन्तर में सृष्टि रचना–सं. डॉ. विद्याचन्द ठाकुर, भारतीय इतिहास संकलन योजना समिति, नई दिल्ली

English books

1. Distt. Gazetteer of Kullu- Edited by T.C Janartha, Himachal Govt.
2. Himalayan Distt. of Kullu Lahoul &Spiti- A.F.P.Harcourt, Vivek Publishing Company, Delhi.

3. History of Punjab Hill States- J.Hutchison & J.PH Vogel, Department of Language & Culture Shimla (H.P)
4. Myths and Rituals of Himachal Pradesh-M.R.Thakur, Indus Publishing Company, New Delhi

पत्र-पत्रिकायें

1. गिरिराज साप्ताहिक–हिमाचल प्रदेश मुद्रणालय परिसर शिमला–5 हि.प्र.
2. दशहरा स्मारिका–दशहरा समिति कुल्लू, हि.प्र.
3. भृगुतुंग त्रैमासिक--कुलूत संस्कृति विकास मंच बबेली कुल्लू, हि.प्र.
4. विपाशा द्वैमासिक–भाषा एवं संस्कृति विभाग, शिमला, हि.प्र.
5. सोमसी त्रैमासिक–हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी शिमला, हि.प्र.
6. शरदोत्सव स्मारिका मनाली–शरदोत्सव आयोजन समिति मनाली, हि.प्र.
7. हिमप्रस्थ मासिक–सूचना एवं जनसंपर्क विभाग, शिमला, हि.प्र.
8. हिमभारती अर्धवार्षिक–हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी शिमला, हि.प्र.

KULLU
DISTRICT
N
Marhi
Solang
Kothi Chhika
Manali
Vashishth
Duff Dunbar
Kullu
Valley
Patlikuhl
Naggar
Rumsu
Samsi
Katrain
Malana
Jana
Raisan
Matikodhar
Chhorang
Kukri
Ser
Manikaran
Gramag
Jari
Pulga
KULLU
Khirganga
Thakur
Kuan
Bijli
Mahadev Temple
Pandu
Bridge
Garsa
Bhuntar
Bajaura
Dham
Mantalai
Sainj
Maraur
Nagwain
NH - 21
Banjar
Bathad
Shoja
Khunna
Sarahan
Khanag
Kharag
Arsu
Takrasi
Ani
Nermand
Dalash
Bahana
LEGEND
District Boundary
National Highway
Other Road
Tracks
District Headquarter
Major Town
Other Town
River
Map not to Scale
Copyright © 2011 www.mapsofindia.com